ओ३म्

महात्मा हंसराज

जीवनी तथा जनसेवा की कहानी



१९३४

प्रकाशक

लाला केशोराम

अधिष्ठाता, महात्मा हंसराज साहत्य-विभाग

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, लाहौर ।

मुद्रक

खुशहालचन्द 'आन्द'

वीर मिलाप प्रैस,

लाहौर

पूज्य महात्मा जी की स्मृति में

उपोद्घात

ससार में इससे बढ़कर अचंभा हो नहीं सकता कि चालीस करोड़ मानवों का सर्वगुण सम्पन्न देश पतन के गहरे गढ़े में गिर जाय ! और गिरे भी यों कि कार्लमार्क्स जैसे दार्शनिक को विश्वास ही न हो कि भारत ने भी कभी सुनहरे दिन देखे हैं।[1] वह इस तथ्य से ही इन्कार कर दे कि इस देश का भी कोई इतिहास है।[2] उसका यह विचार हो कि भारत सदा से ही पराधीन है।

पतन के गहरे गढ़े से देश को उभारने वाली महान् विभूति के जीवन में झांकने से पहले, अतीत के गर्भ में पैठकर हम भारत के भूत को आँक लेना चाहते हैं। निश्चय ही भारत गिरा है, इसकी उज्ज्वल ज्योति घने अंधकार में विलीन हो गई है; इसके धवल आँचल पर अनेकों काले धब्बे उभर आये हैं; परन्तु, यह कहानी परंपरागत होते हुये भी सदाकालीन नहीं है। सृष्टि को जागरण की करवट लिये जो दो अरब बरस गुज़रे हैं, उनमें से केवल अभी के पांच हज़ार बरस छोड़ कर भारत संसार का शिरोमणि

---

१. 'कार्ल मार्क्स के भारत सम्बन्धी खत'—संपादिका फ्रेडाबेदी। १० जून १८५३ के लिखे पहले खत में, जो 'डेली ट्रिब्यून' न्यूयार्क में छपा, कार्ल मार्क्स लिखते हैं, "...मैं उन लोगों से सहमत नहीं हूँ, जिनका भारत के स्वर्णकाल में विश्वास है।"

२. वही पुस्तक : २२ जुलाई, १८५३ का लिखा आठवां खत "...भारतीय समाज का कोई इतिहास है ही नहीं।"

रहा है। संसार का कोई भी एक देश इतने दीर्घ काल तक उन्नति की गोद में नहीं खेला। पाच हज़ार कम दो अरब बरसों तक भारत विश्व की टेक और मानवता का रक्षक रहा है। इस सुदीर्घ-सुकाल में किसी को किसी पर अत्याचार करने का साहस न था; किसी को किसी पर शासन करने की जुर्रत न थी। भारतीय-दर्शन की छत्र-छाया में, भारतीय संस्कृति के आधार पर, भारतीय-सभ्यता के औदार्य में पूर्ण स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत-विकास की पूर्ण स्वाधीनता और सामाजिक-उन्नति की पूर्ण सुविधा थी। कला-कौशल और ललित-गुण, पूर्ण यौवन पर थे। धन-धान्य से देश भरपूर था। भूख से मरना तब लोग न जानते थे। सर्वत्र निश्चिंतता का साम्राज्य था। उच्च विचारों और सद्-संकल्पों से लोगों के मन भरे रहते। आज के संसारी इन रूपहली-सुनहली ठीकरियों पर रीझे अपना धर्म-कर्म भूल बैठे हैं, तब के लोग धन-दौलत हीरे पन्नों की अतुल राशियों से अनपेक्षित भौतिकता से बहुत ऊपर उठ गये थे। आज बन कल ढह जाने वाली स्थूल वस्तुओं में न उलझ वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों और शक्तियों की खोज में संलग्न थे। रोटी और कपड़े को नही, वह आत्मा और परमात्मा को पाना चाहते थे। जिन रहस्यों को उन्होंने दिन का प्रकाश दिखलाया, आज के दार्शनिकों के लिये वह अब तक रहस्य ही हैं। जिन तथ्यों और वास्तविकताओं को न समझ सकने के कारण खट्टे अंगूर समझ लोग मिथ (गल्प) कहने लगे हैं, उसे उन्होंने प्राप्त किया। उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, गृह-सूत्रों तथा अन्य शास्त्रों में हमारे पुरखाओं ने वह अन्तिम ज्ञान अंकित कर दिया, जिससे परे कुछ नहीं।

इन दिनों संसार इस-उस विधान, यहाँ-वहाँ की पद्धति में

उलझता है, मरता-खपता है। राह नहीं पाता। पग-पग पर उसे असंतोष है। लेकिन उजले दिनों में भारत ने एक ऐसे विधान की नींव रखी, जिसमें झगड़ा था न बखेड़ा। सांझे परिवार के सामान्य सदस्यों की भांति कि कोई छोटा न बड़ा, सबको उसने बराबर रहना सिखाया था। ऋग्वेद के इस मंत्र के अनुसार कि—

"कोई छोटा न बड़ा, सब आपस में भाई भाई है। ऐश्वर्य, सौभाग्य, धन दौलत के लिये सब आगे बढो, परमात्मा तुम्हारा पिता है, और गाय के समान पालना करने वाली धरती तुम्हारी मा है... ।"[1]

प्रत्येक के लिये जीवन में बढ़ने का मार्ग प्रशस्त था। किसी को शिकायत हो ही न सकती थी। तैत्रेय-उपनिषद् में (जिस का उद्धरण महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में दिया है) बताया है कि सृष्टि के आरम्भ से लेकर महाभारत तक सार्वभौम चक्रवर्ती राजा आर्य-कुल में ही होते थे। इन चक्रवर्ती राजाओं में से कुछ के नाम भी दिये है · सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्र द्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, बद्ध्यश्व, अश्वपति, शशबिंदु, हरिश्चन्द्र, अंबरीष, ननकत, सर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत, भरत। इसी तरह मनुस्मृति में भी चक्रवर्ती राजाओं के नाम आते हैं। एक ओर विश्वसंघ के रूप में न्यायपूर्ण सुशासन और दूसरी ओर आत्मा-परमात्मा के गूढ़ तत्वों का निदर्शन एवं खोज—भारत वास्तविक उन्नति के शिखर पर था।

भारत के चक्रवर्ती राज्य का मतलब अन्य देशों की पराधीनता नहीं है। महाभारत के विनाशकारी युद्ध से पहले सारा संसार एक ही सूत्र में बंधा था, एक ही संगठन था। अलग अलग राष्ट्रों और देशों का सवाल ही न था। तब अलग राज्यों,

---

१ ऋग्वेद.—मत्र ५, सूत्र ६०, मंडल ५.

अलग सेनाओं और अलग कोषों की आवश्यकता ही न थी। "वसुधैव कुटुम्बकं" केवल एक नारा नहीं बल्कि ठोस सत्य था। संसार भर के लोग एक दूसरे के नातेदार थे। विभिन्न क्षेत्रों के मण्डल बने थे और माण्डलिक उनकी देख रेख करते। 'सत्यार्थ प्रकाश' के ग्यारहवें समुल्लास में महर्षि दयानन्द लिखते हैं, "... यह आर्यावर्त देश ऐसा है, जिस के सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसी लिये इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है, क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसी लिये सृष्टि के आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे... आर्यावर्त देश ही सच्चा पारस-मणि है कि जिस को लोहे—रूप दरिद्री विदेशी छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"

पांच हजार कम दो अरब वर्ष बाद

उस उन्नति से इस अवनति का कारण क्या है?

संसार और सांसारिक झंझटों से निरपेक्षता के दो ही परिणाम होते हैं। मनुष्य पवित्र संकल्पों और धार्मिक सिद्धांतों द्वारा इतना ऊपर उठ जाता है कि उसे यह संसार हेय दिखने लगता है। अथवा, वह कुविचारों और अधार्मिक कर्मों के कारण इतना नीचे गिर जाता है कि भोग-विलास और क्षणभंगुर सुखों को ही सब कुछ समझने लगता है। लगभग दो अरब वर्ष तक वेद, उपनिषद् और भारतीय दर्शनों के उच्चविचारों ने मानव जाति को बहुत ऊपर उठाये रखा। इसके बाद सात्त्विक और राजसी भावों के स्थान पर तामसिक भाव पनपने लगे। तप, त्याग और वैराग्य के जीवन से वह ऊब गये। क्षुद्र-विचार फैलने लगे। फलतः, महा भारत का महा-संग्राम हुआ, जिसने आर्य जाति की जड़ों को खोखला कर दिया। स्वामी दयानन्द जी इस सबन्ध में

लिखते हैं, "स्वायंभव राजा से लेकर पाण्डव पर्यंत आर्यों का चक्रवर्तीराज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत-सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य, पुरुषार्थ रहितता, ईर्षा, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इस से देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्य मांस-सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचार आदि दोष बढ़ जाते हैं, और जब युद्ध विभाग में युद्ध विद्या कौशल और सेना इतनी बढे कि जिस का सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो, तब उन लोगों में पक्षपात, अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है। जब यह दोष हो जाते हैं, तब आपस में विरोध होकर अथवा उन से अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उन का पराजय करने में समर्थ होवे, जैसे मुसलमानों की बादशाही के सामने शिवा जी, गोविंद सिंह जी ने खड़े होकर मुसलमानों के राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।"

एक और स्थान पर स्वामी जी लिखते हैं, "....ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे, तो नाश होने में क्या संदेह?.. ...जब नाश होने का समय निकट आता है, तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं......जब बड़े-बड़े विद्वान राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि लोग महाभारत युद्ध में बहुत से मारे गये और बहुत से

मर गये, तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ईर्षा, द्वेष, अभिमान आपस में करने लगे। जो बलवान हुआ, वह देश को दाब कर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त देश में खण्ड बण्ड राज्य हो गया। पुनः द्वीप-द्वीपांतर के राज्य की व्यवस्था कौन करे? जब ब्राह्मण लोग विद्या-हीन हुये, तब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अविद्वान होने में तो कथा ही क्या कहना? जो परंपरा से वेद आदि शास्त्रों का अर्थ सहित पढ़ने का प्रचार था, वह भी छूट गया।"

इस परिवर्तन से पहले भारत का स्वर्ण काल था[1]। संसार के विभिन्न भागों से विद्या प्रेमी, आत्म प्रेमी और भक्ति प्रेमी लोग भारत में आकर सांसारिक तथा आत्मिक हर तरह की विद्या ग्रहण करते थे।

बीत गये स्वर्ण-काल को लौटा लाने के लिये भारत ने कई बार प्रयत्न किये; लेकिन, हम पतन के बहुत गहरे गढ़े में गिरे हैं। वेद विचार खो गये है; अवैदिक विचारों का बोल बाला है। हमारे स्वर्ण काल का संगठन जब टूटा और भारत, जो सब का केन्द्र था, अव्यवस्थित हुआ, तो अलग अलग देश बन गये, अलग अलग जातियां पनपने लगीं। भारत से सब का सम्बन्ध टूट गया। इस देश में ही बंटवारे होने लगे। केन्द्रीय शक्ति के अभाव में प्रथक प्रथक प्रांत बन गये। इस आपाधापी में ऐसी धांधली मची कि बस, जिस की लाठी उस की भैंस हो गई। सुविचार कुविचारों तले दब गये। पुर्नसंगठन की हर चेष्टा विफल हुई। हम स्वार्थ, वैभव-लोलुपता और धन-लालसा की आग में झुलसने लगे। ईर्षा, द्वेष की प्रचण्ड ज्वालाओं ने निष्काम-सेवा,

१ मनुस्मृतिः अध्याय २, श्लोक २०.।

प्रभु-भक्ति, सद्-मित्रता को फूंक दिया ; सौजन्य की हर वाटिका जल गई । आनन्द का हर कानन मुर्झा गया । किसी की आबरू सुरक्षित रही न धन दौलत । प्रत्येक बात अनिश्चित हो गई ।

यह अवस्था सहस्रों बरस रही । रक्तपात, गृह-युद्ध और आपसी कलह ने ललित-कलाओं, ज्ञान-विज्ञान, खोज-आविष्कार सब मेट डाले । विद्या कुछ लोगों की निजि सम्पत्ति बन कर रह गई । विवेक नष्ट हो गया । प्रभुभक्ति का स्थान प्रकृति-पूजा ने ले लिया । मूर्खता और वहमों की बाढ आ गई । लोगों का जीवन ही दूभर हो गया ।

धीरे धीरे यह दुरावस्था अधिक उग्र और वीभत्स रूप धारती गई । एक ओर जयचन्द मुहम्मद गौरी को बुला लाया तो दूसरी ओर राजा दाहर के शत्रुओं ने मुहम्मद-बिन-कासिम को आक्रमण का न्योता दिया । पहले भारतीय आपस में लड़ते थे, अब विदेशियों के पांवों तले कुचले जाने लगे । सन् १७३६ और १७४६ की नादिरशाही लूटों को कौन भूल सकेगा ? इधर भारत में यह उपद्रव हो रहे थे कि योरुप वालों की लार टपकी । डच इण्डिया कम्पनी ने व्यापार की नींव रखी ही थी कि फ्रांस और इंग्लैण्ड के व्यापारी जहाज भी भारत की लूट-खसोट में हिस्सा बंटाने चल पड़े । फ्रांस और इंग्लैण्ड मे होड़ लगी, कौन भारत का अधिक शोषण कर सकता है । वाल्तायर ने 'फ्रैग्मैंट्स ऑन इण्डिया' नामक पुस्तिका में लिखा है, "भारत के एक बड़े भाग पर मुग़लों का राज्य था, या राज्य समझा जाता था । यह भाग बहुत ही उपजाऊ और धनाढ्य था । भारत के इस भाग के समुद्री तट पर फ्रांसीसी और अंग्रेज काली मिर्चों, रेशमी और छपे कपड़ों, इतर और जवाहरों के व्यापार के लिये लड़ते-झगड़ते

भारतीय शासकों के साथ भी उलझते थे।"

फ्रांसीसी और अंग्रेज दोनों शक्तियों के अधिकारी अधिक से अधिक व्यापारिक सुविधायें प्राप्त करने के लिए छोटे छोटे राजा-नवाबों को उपहारों से छलने लगे। एक दूसरे के विरुद्ध उकसा कर वे उन्हें आपस मे भिड़वा देते। इस तरह ये अपना प्रभाव बढ़ाते रहे और इन्होंने शासन-सम्बन्धी कार्यों में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। गृह युद्ध और आपसी-कलह से देश पहले ही अत्यन्त दुर्बल हो चुका था, लेकिन विदेशी-भय के कारण वह कुछ संभलने लगा था। राजपूत, मरहट्टे और सिख सङ्गठित हो कर अपने पाँव जमा चुके थे। इनके संगठन ने पहली विदेशी शक्ति को समाप्त कर दिया। अपनी अंतिम घड़ियां गिनते कुछ नवाब रह गये थे।

दो सौ बरस पहले

कुछ लोगों ने संभावना कूती कि शायद अब भारत के भाग्य पलटा खायें। लेकिन, अभी योरुप के गृद्ध इसकी ताक में थे। फ्रास और इंग्लैड की व्यापारी कम्पनियां भारत में अपने राज्य के स्वप्न लेने लगीं। बनिया बन के आये शासक बनने लगे। फ्रांस ने तो हथियार डाल दिये, परन्तु अंग्रेज की कूटनीतिज्ञता भारत को जकड़ने लगी। एक की दासता से छूटा भारत दूसरे के चंगुल में फंस गया।

तब देश में हर ओर निस्साहयता, उदासीनता और निराशा का वातावरण था। समाज की व्यवस्था बिखर चुकी थी। गुलामी आके चिमट नहीं जाती, इसके कारण होते हैं। इन कारणों का दिग्दर्शन महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में किया है, "..... विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट.

मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना-पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयम्बर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या भाषण आदि कुलक्षण, वेद-विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।"

महर्षि ने मर्म स्पर्शी शब्दों में लिखा, ". . क्या तुम लोग महाभारत की बातें, जो पांच हजार वर्ष के पहले हुई थीं, उनको भूल गये ? देखो, महाभारत युद्ध में आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया परन्तु, अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा या आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुख सागर में डुबा मारेगा ? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश-विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुख बढा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राज रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय !"

संक्षिप्त शब्दों में महर्षि ने भारतीय दासता का स्पष्ट चित्र अंकित कर दिया है। घोर अज्ञानता मे घिरा हमारा देश जात-पात और घर-बिरादरियों के नाम से अनेकों टुकड़ों में बटा, हर टुकड़ा एक-दूसरे का बैरी हो रहा था। एक दो नही, तैंतीस करोड़ देवी देवताओं के प्रादुर्भाव के बाद हर नदी-नाला, हर पशु-पक्षी, हर पत्थर-कंकर, हर ज्वर-रोग की पूजा-अर्चना शुरू हो गई थी। समाज की कुरीतियां रूढ़िवाद के संसर्ग से घुन बन हमारी नींवों को खोखला कर रही थीं।

जलती मोमबत्ती का यह एक सिरा था। दूसरी ओर से हमारे देश को कुछ विधर्मी जला रहे थे। मौलवियों और पादरियों के कुत्सित प्रचार से हमारी दासता की कड़ियां और भी मजबूत होने

लगीं। निस्सन्देह, हिन्दू-धर्म में ऐसी बातों का समावेश हो गया, जो कि किसी भी अवस्था में सम्मान-सूचक न थीं और उन्ही को सीधे-टेढ़े ढङ्ग से जनता के सन्मुख लाकर मौलवी-पादरियों ने अपना उल्लू साधना शुरु किया। योरुपियन लेखकों और पादरियों ने भारत को निकृष्ट रग मे संसार के सामने रखा। इसमे उनका विशेष उद्देश्य था। वे सारे राष्ट्र को ही निकम्मा और अकर्मण्य बना देना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने ऐसे विचारों का प्रचार किया.जिससे भारत में निराशा फैले और यहां के रहने वाले न केवल अपने देश से, न केवल अपनी सभ्यता-संस्कृति से, अपने धर्म कर्म से, अपितु अपने आप से भी घृणा करने लगे। फ्रैंच लेखक वाल्तयर ने 'फ्रैग्मैंट्स ऑन इंडिया'[१] मे लिखा, ". .. उन (हिन्दुओं) में से अधिकतर लोग सुलभ जीवी और उदासीन जीवन बसर करते हैं। उनका मुख्य सिद्धान्त, जो उन्होंने अपने प्राचीन ग्रन्थों से खोजा है, यह है कि चलने की अपेक्षा बैठना अच्छा है, बैठने की अपेक्षा लेटना अच्छा है, लेटने (जागने) की अपेक्षा सोना अच्छा है और सोने (जीने) की अपेक्षा मर जाना अच्छा है।"

पादरी अपने प्रचार मे हिन्दुओं को असभ्य साबित करने लगे। देवी देवताओं की हंसी उड़ाने लगे; और हिन्दू अपनी प्राचीन सभ्यता और भव्य वैदिक सिद्धांतों को भुला बैठने के कारण इनका कोई उत्तर न दे पाते थे। वे इतना कहने के भी साहसी न रहे कि जिन बातो की तुम हंसी उड़ाते हो

१. यह पुस्तक तब लिखी गई थी, जब अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी कारूमण्डल के तट पर भारतीय दासता का जाल फैला रही थी; पर, अभी अच्छी तरह उसके पाँव न जमे थे।

और जिनके कारण हिन्दू धर्म को अपमानित करते हो, वे बातें हिन्दू धर्म की नहीं, उन लोगों की हैं जो वेद के विरुद्ध हैं। विरोधी प्रचारक यहीं तक नहीं रुके, उन्होंने दिल दुखाने वाली बातें भी लिखना शुरू कीं। एक व्यक्ति अब्दुल्लाह ने "तोहफ्तुल-हिंद" नामक पुस्तक नब्बे बरस पहले लिखी, जिसमे हिन्दू सभ्यता हिन्दू-धर्म और हिन्दू पूर्वजों को बेहद घनौने रूप मे वर्णन किया। उसका उत्तर देने वाला कोई न था।

उधर यह हालत थी, इधर अंग्रेज़ों ने हौले हौले अपनी कूटनीतिज्ञता से मां भारत की छाती पर अपने नुकीले पॉव रख दिये। व्यापारी संस्था शासक बन गई। भैंस को भैंस वाले की लाठी से हॉकने के लिये अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तानी कर्क्लों की आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य से सरकार और इसाइयों ने स्कूल व कालिज स्थापित किये। लोग चाव से पढ़ने लगे। वहॉ अंग्रेज़ी शिक्षा के साथ इसाई-धर्म का प्रचार भी होने लगा। इसी शिक्षा ने हिन्दू युवकों को न केवल हिन्दू-धर्म से विमुख कर दिया, अपितु उनका आत्म-विश्वास इतना खो गया कि वे अपने को किसी उत्तरदायित्वपूर्ण काम के अयोग्य समझने लगे। उनके मन मे यह बात बैठ गई कि ये योरुपियन लोग ही हैं, जो यह सब राज-प्रबन्ध कर सकते हैं। उनका धर्म ऊंचा है, विचार ऊंचे हैं। हमारा धर्म तो कही जिक्र करने के योग्य भी नही। अंग्रेज़ों ने भारत की जो हालत कर दी, उसके सम्बन्ध मे कार्लमार्क्स लिखते हैं, "भारत के सब गृह युद्ध, आक्रमण, क्रांतियॉ, विजय, दुर्भिक्ष आदि आसाधारण उलझनें तीव्र और विनाशकारी होते हुए भी अपनी निरंतर क्रियाओं से, जैसी कि वे दिखती थीं, इसके धरती-तल से गहरी नहीं जा सकीं। इंग्लैंड ने भारतीय समाज

का सारा ढांचा ही तोड़ डाला; और अभी इसके निर्माण के कोई आसार नहीं दिखते। नये संसार की प्राप्ति के बिना पुराने संसार की क्षति हिन्दुओं की वर्तमान आपदा को विशेष रूपेण करुणाजनक बना देती है, और ब्रिटेन द्वारा शासित हिन्दुस्तान को समस्त प्राचीन परम्परा और कुल पुराने इतिहास से अलग कर देती है।"

समाज बिखर गया था। पौराणिकता और अज्ञान ने भाई को भाई से अलग कर दिया था। प्रकृति-पूजा ने बुद्धि हर ली थी। आत्म विश्वास के स्थान पर आत्मग्लानि पनप रही थी। 'जगत् तीन काल में मिथ्या है,' का प्रचार प्रबल था। घर की यह हालत, बाहर वालों के लगातार हमले, शासन की ओर से हमें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूप से नष्ट कर देने की चेष्टा—सारा ढांचा ही लड़खड़ा रहा था। कुछ बरस और यदि यही अवस्था रहती, तो उद्धार असम्भव था। योरुपियन पादरियों ने तो लिख भी दिया कि पचास बरस बाद सारा भारत इसाई हो जायगा!

दयानन्द

लेकिन, भारत को उठना था। वह उठा।

देश के कल्याण के लिये दयानन्द हाथ में उज्ज्वल प्रकाश की जोत लेकर हिमालय की उत्तुंग चोटियों से तले आया कि बिगड़ी बना सके। पश्चिम की प्रबल आंधी से इस जोत को बचाने के लिये पुराणों, वहमों और अज्ञान की सब बाधाओं को पार कर ऋषि दयानन्द ने तैलसिंचन के लिये पुण्य-पुरातन संस्कृति और ज्ञान के भण्डार वेदों का आश्रय लिया। अधोगति का कारण उन्होंने स्पष्टतः अपने उन्नत अतीत के प्रति अश्रद्धा में

आँका। उन्होंने देखा, लोग अनेकों ऊल-जलूल बातों में उलझे वास्तविकता को भूल रहे हैं। उन्होंने एक स्वर से वेदों की महानता सिद्ध करके नारा लगाया कि समस्त अनीश्वर-कृत पुस्तकें अस्वीकार्य हैं। वेद ही ईश्वरीय-ज्ञान है। हमें इसी ओर बढ़ना होगा। उन्होंने कहा, "…..लौटो, वेदों की ओर! उन्हीं पर आचरण करने से संसार अरबों वर्षों तक सुखी रहा है और अब फिर सुखी हो सकता है।" ऋषि दयानन्द ने लोगों को एक नया विचार दिया। नव-प्रकाश से संसार की आँखें खुल गईं। मनुष्य मात्र के लिये उनका प्रेम, अदम्य साहस, प्रबल पुकार और ब्रह्मचर्य के तेज ने लाखों लोगों को अपनी ओर खैंच लिया। अचम्भा होता है कि आज से सौ बरस पहले, जब कि यातायात अत्यन्त दुर्गम था, प्रचार के कोई साधन न थे, रेल-मोटर न थी, अखबार-तार न थे, विरोध अपरिमेय था, स्वामी जी इतने थोड़े समय में इतना अधिक काम कर सके। १८६३ में उन्होंने वेद प्रचार का काम शुरु किया और १८८३ में उन्हें विष पिला कर शहीद कर दिया गया। इस अल्पकाल में उन्होंने वेद-भाष्य किया, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका लिखी, सत्यार्थ प्रकाश, संस्कारविधि आदि अनेक पुस्तकों की रचना की। सैंकड़ों शास्त्रार्थ किये, सहस्रों व्याख्यान दिये, लाखों मील यात्रा की। चौदह बार विषपान कर वह संसार को आर्य समाजरूपी एक अमृत दे गये, जो ओम् और वेद के झण्डे को आज तक ऊँचा रखे है।

रोग के निदान के बाद स्वामी जी इस निश्चय पर पहुंचे कि हिन्दुओं के अन्दर जब तक कुरीतियां, पौराणिक विचार, छूत-छात, ऊंच-नीच का भेदभाव, आपसी फूट, अब्रह्मचर्य आदि दुर्गुण

एवं दुर्व्यसन है, तब तक वे परतन्त्रता की बेड़ियां काट नहीं सकेंगे। लेकिन, भारत का दुर्भाग्य, उसी राज-रोग ने फिर आ दबोचा। हिन्दुओं ही ने स्वामी जी की राह रोक ली, उनके मार्ग में कांटे बिछा दिये। इस जाति ने सदा अपने उपकारक का विरोध किया है। कुमारिल भट्ट, शिवाजी, राणा प्रताप, बन्दाबैरागी आदि के प्रति अपनों के विश्वासघात, विरोध और वैमनस्य के उदाहरण हमारी जाति के इतिहास में कुरूप धब्बों के रूप में उभर-उभर आते हैं। सहस्रों वर्षों के पश्चात् मिले दयानन्द जैसे ऋषि को भी अपनों ने ही ज़हर पिला दिया और उस द्वारा आरोपित अमृत-वृक्ष आर्य समाज के साथ इन्होंने ऐसा व्यवहार किया कि उसे दोहराते लज्जा से सिर झुक जाता है। समस्त देश को एक सूत्र में बांधने, ऊंच-नीच, जात-पात का भेद-भाव मिटाने, बाल्यावस्था के ब्याह बन्द कर हृष्ट-पुष्ट राष्ट्र बनाने, बिछुड़ों को मिलाने, गिरों को उठाने के उद्देश्य से ऋषि के सेवकों ने एक प्रकाश-स्तम्भ स्थापित किया। इस प्रकाश द्वारा वे निराशा के अन्धकार को दूर करना चाहते थे और जन-साधारण में आत्म-विश्वास, आत्म-अभिमान, आत्मरक्षा, स्वदेश-रक्षा और स्वदेश प्रेम की भावना पैदा करना चाहते थे। सारे देश को एक करने के लिये उन्होंने शुद्धि का आंदोलन शुरू किया कि देर से बिछुड़े मिल जावें। इसका स्वागत कैसे हुआ, यह निम्न घटना से स्पष्ट है। मीरपुर, रियासत जम्मू के विशिष्टों को जाति-प्रवेश कराया गया और उनको यज्ञोपवीत धारण कराये गये तो पौराणिकों को क्रोध आगया। एक विशिष्ट को पकड़ जनेऊ तोड़ डाला। गले से लेकर कमर तक उसका शरीर गर्म दरांती और लाल लाल सलाखों से दाग़ा दिया और जनेऊ का निशान बना कर कहा,

"लो, तुम्हें पक्का जनेऊ पहना दिया।" जिन ब्राह्मणों, क्षत्रियों अथवा वैश्यों ने शुद्धि और अछूतोद्धार के काम में सहयोग दिया, उन्हें जाति-बहिष्कृत करके रोटी-बेटी का रिश्ता-नाता बन्द कर दिया। आर्यसमाजी पापी का पर्यायवाची शब्द बन गया था। आज से साठ-सत्तर बरस पहले शुरू किए गये आंदोलन में यदि हिन्दू-मात्र का सहयोग प्राप्त होता तो आज देश की समस्त साम्प्रदायिक समस्यायें सुलझ गई होतीं। न पाकिस्तान की मांग होती; न यह नित के बखेड़े। लेकिन, खेद कि सहयोग के स्थान पर विरोध मिला। भारत के दुर्भाग्य के दिन बढ़ गये।

हंसराज

एक ओर हिन्दुओं की यह आपसी-कलह और दुरावस्था; दूसरी ओर विदेशी विचारों और विदेशी सभ्यता का शासन के आश्रय घोर आक्रमण—हिन्दू समाज एक महान् विपदा में उलझ गया। अपने उपकारक दयानन्द को लोगों ने मौत की नींद सुला दिया। एक केवट मिला था डगमगाती नैया को, नैया के सवारों ने उसे नदी में धकेल दिया। तब झुंझला के उन्होंने देखा, नदी में सागर की लहरें नैया को खा जाने के लिये बढ़ रही हैं। आतङ्क फैल गया। घबराहट अकुलाने लगी। निराशा उभरने लगी। चिन्तित जाति सोचने लगी, "अब क्या होगा!" तब, दयानन्द की जोत से प्रकाश पा एक युवक ने इस निराशा को चीर नैया की पतवार थामने का निश्चय किया। इस निश्चय की पूर्ति में उसे अपना जीवन बलिदान कर देना पड़ा।

महात्मा हंसराज चाहते तो अन्य सांसारिक लोगों की तरह उच्च-से-उच्च पद प्राप्त कर लाखों की सम्पत्ति जुटा लेते। लेकिन जाति की दुरावस्था ने उन्हें बलिदान के इस मार्ग पर

बढ़नें के लिए प्रेरित किया। उन्होंने झाँका कि हिंदू-युवक अपने सनातन वैदिक धर्म से अपरिचित होने के कारण इसाइयों और मुसलमानों के तीव्र-प्रचार और इसाई-संस्थाओं की आर्थिक-सहायता से अपने धर्म से पतित हो रहे हैं। उन्होंने बढ़ता हुआ एक तूफान देखा और रुक न सके। कूद पड़े। सारी आयु निर्धनता, तपस्या और त्याग में बिताते हुए संसार के कल्याण के लिये धर्म, देश और जाति की सेवा का प्रण लिया। होश सम्भालने से लेकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्होंने हर श्वास के साथ देश से अज्ञानता को दूर करने का प्रयत्न किया। हिन्दू-समाज को सुधारने और दुखी, भूकम्प, अकाल, दुर्भिक्ष,महामारी पीड़ितों की सेवा-सहायता करने केलिये वह सदा तत्पर रहे। जीवन के ७४ वर्षों में से ५८ वर्ष उन्होने परोपकार मे ही बिताये। दयानन्द कालिज को सफल बनाने के लिये उन्हों ने १८८५ में अपना जीवन अर्पण किया और एक कौड़ी लिये बिना शीत-ग्रीष्म, बीमारी, दुख, गरीबी, कष्ट, विरोध की तनिक भी अपेक्षा किये बिना उन्होंने मृत्यु-पर्यंत अपना प्रण निभाया। उनकी निस्वार्थ सेवाओं और निष्काम प्रयत्नों से उन्हें हर क्षेत्र में पूर्ण सफलता मिली। स्वभावतः, कई लोग इस सफलता को सह नही सके; ईर्ष्या की आग में जलने लगे। इस आग की लपटें महात्मा जी तक भी पहुंचीं; परन्तु, वह शीतल स्वभाव और पूर्ण दृढ़ता से अपने पथ पर अग्रसर रहे। उन के विरुद्ध कई षडयन्त्र रचे गये, बीसियों लेख लिखे गये, झूठे दोष आरोपित किये गये, परन्तु, वह अपने निश्चय पर स्थिर रहे। इस बीच उन्हें कई प्रलोभन दिये गये, देश के नेतृत्व का स्वर्ण-जाल फैलाया गया। प्रबल राजनैतिक आंदोलन के समय उन्हें

कहा गया कि यदि आप इस में शामिल हो जायेंगे तो सारे देश के नेता बन जायेंगे। तब महात्मा जी ने केवल इतना ही कहा, "मैं नींव में पड़ने वाला पत्थर हूं, रचनात्मक कार्य में लगा हूं और इसी में लगा रहूंगा।"

उनका सारा जीवन तप और त्याग का जीवन है। धन दौलत, सुख-संपदा, भोग-ऐश्वर्य सब त्याग दिया। ग़रीबी को निमंत्रण दिया। भाई द्वारा प्राप्त केवल चालीस रुपये मासिक पर गुज़ारा करते रहे। स्व-प्राप्त गरीबी में दुख के दिन काटना सब से कठोर तपस्या है। यक्ष के पूछने पर कि "तप क्या है ?" युधिष्ठर ने कहा था, "तप: स्वधर्मवर्त्तित्वं।" अपने कर्त्तव्य को करते रहना ही तप है। दुख-सुख, रोग-अरोग, मान-अपमान, प्रसन्नता-अप्रसन्नता की अपेक्षा किये बिना जो कर्त्तव्य अपने कंधे ले लिया, उसे निभाते जाना सच्चा तप है। महात्माजी ने एक भाषण में कहा था, "मनुष्य जीवन का एक ध्येय होना चाहिये, एक केंद्र, जहाँ पहुंच कर वह अपना जीवन क़ुर्बान कर सके, अपने धन-दौलत और बाल-बच्चों को सुविधा से छोड़ सके। एक स्थान होना चाहिये, जहाँ पहुंच कर गर्व के साथ कह सके कि चाहे प्राण चले जायें, चाहे सब ओर नाश-विनाश नाचने लगे तो भी वह लौटेगा नहीं, पीछे हटेगा नहीं। ऐसे स्थान पर ही मनुष्य का वास्तविक चरित्र और उसका असल मोल मालूम होता है।" यह शब्द महात्मा जी ही के मुख से शोभा देते हैं, जिन्होंने जीवन का एक ध्येय मानकर उम्र भर तपना मंजूर किया।

त्याग की साक्षात मूर्ति, सरलता एवं सादगी का सजीव चित्र, निरभिमानता के आदर्श हंसराज का जीवन अनुकरणीय है। रहने का एक छोटा-सा कमरा, लकड़ी का एक तख्तपोश,

दो टूटी हुई कुर्सियां, और बस। कपड़े मोटे-झोटे शुद्ध स्वदेशी, जूता होशियारपुर का। सीधा सादा पाजामा, बन्द गले का कोट, ऊबड़-खाबड़ सी पगड़ी—यह उनका वेश था। उन्नत विशाल मस्तक, श्वेत वर्ण, लम्बे चेहरे पर भव्य दाढ़ी, ऐसे लगता था, मानो कोई प्राचीन काल का देवता हो। बातचीत में केवल माधुर्य ही नहीं, आर्थिकता भी थी। नपेतुले शब्द, एक अक्षर भी व्यर्थ न बोलते। सागर की तरह गम्भीर, हिमालय की तरह निश्चल, और चन्द्रमा की तरह शान्त क्रोध पर उन्हें पूर्ण विजय प्राप्त थी, पूर्ण संयमी। कितना ही कीचड़ उन पर उछाला गया, लेकिन, उन्होंने कभी किसी को भला-बुरा नहीं कहा। एक बार विरोधियों के निकृष्ट प्रचार से दुखी हो कर महात्मा जी के एक प्रेमी ने कहा, "अब तो सहन नहीं हो सकता। आज्ञा दीजिए कि इन्हें जवाब दिया जाय।" महात्मा जी ने उत्तर दिया, "वक्त आयेगा, जब ऐसी बातें लिखने वाले स्वयं लज्जित होंगे। यदि तुमने भी लज्जित होना है तो तुम्हारी इच्छा।"

बे-लगाव कितने थे, इसका एक ही उदाहरण है। १८८५ से १९११ तक दयानन्द कालिज रूपी पौदे को वृक्ष बना उसके प्रिंसिपल पद को भी त्याग दिया और वेद प्रचार तथा लोक सेवा की ओर ध्यान दिया। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का काम अपने हाथ में लेकर वेद-प्रचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया। दुखी-पीड़ितों की सेवा में दिन-रात एक कर भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक दयानन्द का सन्देश पहुंचा दिया, और जब देखा कि सभा का काम भी अब सुचारु रूप से होने लगा है तो १९३७ में इसका प्रधान पद भी त्याग दिया।

महात्मा जी के जीवन का एक ही उद्देश्य था। ऋषि का

मिशन सफल हो ताकि हिन्दू जाति में नया जीवन आये, वह कुरीतियों और वहमों से बचे, एक ईश्वर की उपासक हो और पराधीनता की कड़ियां काट सके। इस के लिये उन्होंने उपयुक्त साधन बरते। दयानन्द कालिज की निस्वार्थ एवं निष्काम सेवा, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की स्थापना, महिला महा-विद्यालय की स्थापना आदि सब इसी कार्यक्रम की कड़ियां थीं। इसी ध्येय-प्राप्ति के लिये जहाँ कहीं भी भारतीयों पर कष्ट आया, उन्होंने वहाँ ही आर्य-सेवक भेजे, स्वयं भी वहाँ पहुंचे। शुद्धि आँदोलन, अछूतोद्धार, हरिजनों की उन्नति आदि सब का यही प्रयोजन था। महात्मा हंसराज जी महात्मा गांधी के हरिजन सेवक संघ मे भी काम करते रहे।

इस ध्येय के पीछे एक विचार था, जो महात्मा जी के इस वाक्य में झलकता है, " . मैं तो अंत में आप से यही कहना चाहता हूँ कि महर्षि दयानन्द के बताये मार्ग पर दृढ़ता से कायम रहें और उस पर चलते हुये वैदिक धर्म का प्रचार और आर्य जाति का सुधार करे, ताकि सारे संसार का कल्याण हो सके।" महात्मा जी कहा करते थे कि आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य सारे संसार का उपकार करना है, परन्तु, यह तब तक संभव नहीं, जब तक हिन्दू जाति मजबूत नहीं होती। वह अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आँदोलन को उस हद तक अच्छा समझते थे, जहाँ तक कि वह आजादी का प्रचार करती है, लेकिन, वह कांग्रेस नेताओं के कार्य-क्रम एवं ढंग-साधनों को सही नहीं समझते थे। विशेष कर उन की मुसलमानों को खुश करने की नीति को न केवल हिन्दुओं के लिये अपितु सारे देश के लिये बहुत हानिकर मानते थे। महात्मा जी ने कई बार दुःखी

हो कर कहा, "कांग्रेस नेता हिन्दुओं को ही कमज़ोर कर रहे हैं।" एक बार उन से पूछा गया कि वर्तमान अवस्था में हिन्दुओं को क्या करना चाहिये, तब महात्मा जी ने लिखवाया, "...हिन्दुओं का पहला काम हिन्दुओं की सहायता करना है और दूसरी संस्थाओं के साथ उन विषयों पर सहयोग करना है, जिस से हिन्दुओं को हानि न हो, बल्कि लाभ हो। और दूसरी सस्थाओं अथवा सरकार का विरोध करना है, जहाँ हिन्दुओं को नुकसान हो। संक्षेपत., हिन्दुओं की हिन्दू-नीति होनी चाहिए। सम्भवत·, यह विचार संकीर्णता समझा जायगा। लेकिन संकीर्ण हो कर अपने अस्तित्व को बनाये रखना अधिक जरूरी है बजाय इस के कि उदार हो कर कोई संस्था अपने को नष्ट कर ले।"

१६२०-२१ में जब कांग्रेस ने खिलाफत आँदोलन का साथ दिया तो महात्मा जी ने कहा, "थोड़ी देर के बाद आप देखेंगे कि ब्रिटिश सरकार मुसलमानों की पीठ ठोकेगी और हिन्दुओं को गिराना शुरू करेगी।" महात्मा हंसराज जी का एक एक शब्द सत्य प्रमाणित हुआ। मतान्ध मुसलमानों को प्रसन्न करने की नीति छोड़ कर ही कांग्रेस सफल हो सकेगी। जब कांग्रेस ने बायकाट का आँदोलन जारी किया और शिक्षा-संस्थाओं को भी बन्द करने की घोषणा की और पञ्जाब कांग्रेस की आज्ञानुसार स्वर्गीय लाला लाजपत राय ने दयानन्द कालिज और दयानन्द स्कूलों को भी बन्द करने के लिये लेख लिखे तो महात्मा हसराज जी ने पूरी शान्ति, गम्भीरता और सौम्यता से उनका ऐसा तर्क और युक्तिपूर्ण उत्तर दिया कि उन के सिद्धांत की सत्यता को मानना पड़ा। महात्मा जी ने तब लिखा था कि शिक्षा-संस्थाओं को राजनैतिक आदोलनों की टेक नहीं बनाना चाहिये। इनके बन्द होने से सहस्त्रों नवयुबकों का

जीवन नष्ट हो जायगा। बायकाट आँदोलन तो कुछ देर में निबट जायगा; परन्तु, हिन्दुओं को बहुत हानि पहुंचेगी। राजनैतिक आँदोलन की आँधी थमने पर जनसाधारण ने देखा कि महात्मा जी का कथन सही था।

शिक्षा के सम्बन्ध में महात्मा जी का निश्चित मत था कि केवल अंग्रेजी शिक्षा हमारे नवयुवकों को पथभ्रष्ट कर देगी। वर्तमान शिक्षा-पद्धति से वह सहमत न थे। प्राचीन शिक्षा-पद्धति को वह सही समझते थे और इस सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्टरूपेण कहा भी। १६०८ में आपने कहा, "शिक्षा केवल अमीरों के लिए नहीं होनी चाहिये, बल्कि गरीबों और निस्सहाय व्यक्तियों के लिये भी शिक्षा वैसी ही आवश्यक है। इस लिये उनकी निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध समाज अथवा सरकार की ओर से होना चाहिये। तभी यह लाभप्रद हो सकेगी।" यह बात उन्होंने केवल कही ही नहीं, अपितु १६०८ में प्रारंभिक-शिक्षा मुफ्त देने की घोषणा भी कर दी। आप ने यह भी कहा उच्च शिक्षा हमारी आवश्यकताओं के अनुसार होनी चाहिये। संस्कृत के सम्बन्ध में आपका कथन था कि संस्कृत के ज्ञान के बिना कोई भी आध्यात्मिकता की अतुल धनराशियों तक पहुंच नहीं सकता। हिन्दी का ज्ञान तो आप न केवल प्रत्येक हिन्दू, अपितु प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिये अनिवार्य समझते थे और कहा करते थे कि जिन हिन्दू स्कूलों और कालिजों में हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा नहीं दी जाती, उन पर हमारा धन व्यर्थ ही व्यय हो रहा है।

प्रभु-भक्ति के सम्बन्ध में उन्होंने बीसियों लेख लिखे और भाषण दिये। महात्मा जी दृढ़ ईश्वर-विश्वासी थे। इस विश्वास का सबूत लोगों ने तब देखा, जब कि दिल्ली षड्यन्त्र केस में उन

का बेटा क़ैद था। इतना बड़ा मुकद्दमा चल रहा था और घर में फूटी कौड़ी न थी। धर्मपत्नी मृत्यु शय्या पर थी। निराशा ही निराशा चारों ओर दिखाई देती थी। तब एक देवी ने कहा कि मालूम होता है, ईश्वर कोई नही। यह सुनते ही महात्मा जी को क्रोध आ गया। एक ही बार वह क्रुद्ध हुए हैं और तभी अंगारे बरसाते-से कहने लगे, "सावधान, फिर ऐसा न कहना। भगवान हैं। वही हम सबके सच्चे हितैषी हैं। जो करेंगे, अच्छा करेंगे!"

प्रतिदिन, प्रात:-सायं संध्या करने में वह ७४ बरसों में कभी नहीं चूके। भोर वेला में उठकर अत्यन्त आनन्द-मग्न हो कर भगवान का भजन करते और जब भी वक्त मिलता गायत्री का जाप करते। वेद भगवान पर आपकी अटूट श्रद्धा थी। साधु आश्रम, होशियारपुर में जब लाला धनीराम जी भल्ला ने चतुर्वेद यज्ञ कराया तो महात्मा जी उस यज्ञ में निरन्तर उपस्थित रहे। जब तक आँखें ठीक रहीं, वह प्रतिदिन वेदों का स्वाध्याय किया करते थे; आँखें कमज़ोर हो गईं तो, एक पण्डित से सुना करते।

लोकसेवा, गरीबों, दुखियों, विधवाओं, अनाथों के लिये उनका घर सदा खुला रहता। जो जाता संतुष्ट होकर लौटता। आयुपर्यन्त किसी की बुराई का उन्होंने विचार नही किया। जहाँ तक बन पड़ा, औरों का कल्याण किया। महात्मा जी के जीवन पर दृष्टिपात करने से पता लगता है कि जीवन भर उन्होंने कठिन तपस्या की। अपनी प्रण-पूर्ति के लिये उन्होंने सर्वस्व त्याग दिया। लगातार ५८ बरस तक एक रस रह कर एक ध्येय को लेकर चलते रहना बहुत कठिन काम है। एक ही बार आग में छलांग लगा कर पतंगे की तरह जल मरना निस्संदेह बीरता है; शत्रुओं से जूझते हुए मर-मिटना पराक्रम है; पिस्तौल का निशाना

बन जाना साहस है; लेकिन आजन्म पगपग पर अपनी भावनाओं, उमंगों और लालसाओं को रौंदते रहना और अपने पथ से विचलित न होना सबसे बढ़ कर वीरता, पराक्रम और साहस की बात है।

अग्नि आंच सहना सुगम, सुगम खड्ग की धार।
नेह निभावन एकरस, महा कठिन व्यवहार॥

और महात्मा हंसराज जी ने, सच ही, एक रस रह कर आर्य-हिन्दू जाति, देश और संसार के कल्याण के लिये अपना जीवन तिल-तिल जला दिया, अपने रक्त की एक एक बूंद बहा दी। इस आशा में कि शायद यों जलने से वह बुझा हुआ दीपक फिर जल पड़े, इस रक्त से वह सूखा वृक्ष फिर सिंच सके और ससार फिर वही स्वर्णकाल देख सके, हिंदुस्तान में एक बार फिर स्वर्णयुग आ सके और हिन्दू जाति फिर अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सके। ऐसे महात्मा का जीवन लिखना, पढ़ना और सुनना निश्चय ही महान् सौभाग्य है।

मैं चाहता था, कि महात्मा हसराज जी के अट्ठावन बरस की कठिन तपस्या का विस्तृत विवरण लिखूं; परन्तु, कागज़ की किल्लत ने मेरी कलम रोक दी। और संक्षेपत: लिख कर ही मैंने संतोष किया। यह पुस्तक लिखने मे मैंने निम्न पुस्तकों एवं साधनों का जी भर कर उपयोग किया है—१. पंडित श्री रामशर्मा लिखित महात्मा हंसराज जी का जीवन (अंग्रेज़ी) २ 'आर्य गज़ट' लाहौर की कई बरसों की फाइलें। ३. दैनिक 'मिलाप' लाहौर की १६२२ से १६३८ तक और दैनिक 'हिंदीमिलाप' की पिछले वर्षों की फाइलें। ४. श्री के० सी० भल्ला लिखित महात्मा हंसराज की जीवनी (अंग्रेज़ी) ५. दयानन्द कालिज 'यूनियन

मैगज़ीन' का 'हंसराज अंक' व अन्य अंक। ६ विभिन्न आर्य समाजों द्वारा प्रेषित महात्मा जी की जीवन घटनायें। ७. विभिन्न आर्य समाजों द्वारा प्रेषित पत्र। ८. महात्मा जी की स्वलिखित दिन-चर्य्या और डायरी। ६. लाला लाजपतराय लिखित पुस्तिका, 'आर्यसमाज'। इन के अतिरिक्त कुछ और भी फुटकर पुस्तकों का मैंने उपयोग किया है, उनका यथा-स्थान उल्लेख है। महात्मा जी के संस्मरण प्राप्त करने के लिये प्रिंसिपल दीवान चंद एम० ए०, श्री बलराज भल्ला, श्री हरिकृष्ण लाल भल्ला, पंडित सरस्वतीनाथ, पंडित मस्तान चंद, डाक्टर गिरधारी लाल, पंडित शुचिव्रत एम० ए० आदि से मैंने सहायता ली है। इन सब का आभारी हूं।

एक शब्द मुझे 'यश' के बारे में भी कहना है। पुत्र होने के नाते मेरा धन्यवाद करना उसे जचा नहीं। उसका विचार है, बाप और बेटे में अंतर नहीं होता, तब अपना ही धन्यवाद कौन करे? इसलिये, धन्यवाद तो नहीं करता, परन्तु, इतना तो कहूंगा ही कि इस पुस्तक के संपादन और प्रकाशन में जो परिश्रम 'यश' ने किया है, उसके बिना न तो इसकी भाषा यह होती और न रूपरेखा।

यह जीवन-चरित्र लिखने के लिये लाला केशोराम जी अधिष्ठाता, महात्मा हंसराज साहित्य विभाग, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर ने मुझ से बार-बार आग्रह किया। अनेक झंझटों में उलझे रहने पर भी यह कार्य-सम्पन्न करने का श्रेय उन्हीं की प्रेरणा को है। उन का धन्यवाद करता हूं। और भगवान का उपकार माने बिना तो मैं रह ही नहीं सकता कि जिस ने यह पुस्तक लिखने की समर्थ दी।

खुशहाल चन्द

'बरखा की बूंदें'

"बादल कहाँ से उठा ? किस रास्ते से आया ? बरखा की बूंदें कहती हैं, तुम्हें इससे क्या ? तुम अपने खेत की सिंचाई करा लो, सूखी खेतियाँ हरी बना लो, रीते तालाब भरवा लो।"—यह शब्द महात्मा हंसराज जी ने तब कहे, जब मोहन आश्रम, हरद्वार में एक बार मैंने उनसे कहा, "जीवन का क्या भरोसा है। आप के जीवन काल में ही यदि आपका जीवन चरित्र तैयार हो जाय तो अच्छा होगा।"

और इस तरह उन्होंने केवल एक बार ही नहीं कहा। मुझे उनके बहुत निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। परन्तु, जब कभी भी मैंने उनसे जीवन-वृत्तांत लिखवाने की प्रार्थना की तो उन्होंने सदा यही कहा, "कोई बात पूछो तो बतला दूँ, कोई प्रसङ्ग चले तो घटना सुना दूँ। कहाँ पैदा हुये, कब पैदा हुये, किस परिवार में पैदा हुये, इसमें जन साधारण को क्या रुचि हो सकती है, और यदि हो भी तो इससे क्या लाभ ?"

सुना है, स्वामी दयानन्द जी महाराज से भी जब कभी उनके जन्मस्थान और माता-पिता के बारे में पूछा जाता तो वह भी यही उत्तर देते। स्वामी सर्वदानन्द जी तो मुझे प्राय: कहा करते कि आप को क्या लाभ होगा, यदि यह बता दूं कि मैं किस गाँव मे पैदा हुआ। परन्तु, मानव जिन्हें अपने दिल में स्थान देता है और जो उसकी निगाह मे पूज्य हैं, उनके सम्बन्ध में स्वभावत: जानना चाहता है कि ऐसे महापुरुष को जन्म देने का सौभाग्य किस पवित्र भूमि को प्राप्त हुआ ? ऐसी दिव्य विभूति को अपनी कोख में रखने वाली वह कौन सी आदर्श माता थी ?

जन्म

दोआबा (पञ्जाब) की एक सुघड़ देवी पौ फटने से पहले ही मकान के निचले भाग में आ चुकी थी। एक सुन्दर गाय उस द्वारा परोसे 'भोजन' की प्रतीक्षा में थी। देवी ने उसे पुलकित नेत्रों से देखा, प्यार से छुआ और प्रीत से संजोया 'चारा' उस के सामने रख दिया। उधर भगवान् भुवन-भास्कर अपने आलोक से संसार को आलोकित करने के लिये आकुल थे कि इधर देवी ने महसूस किया, जिस दिव्य-विभूति को वह नौ मास से अपने पेट में पाल रही है, वह भी प्रकाशित हुआ चाहती है और जैसे

ही सूर्य की किरणें अवतरित हुई, उस देवी-माँ की गोद में एक तेजस्वी बालक मचलने लगा। अड़ोस-पड़ोस की जान-पहचान वाली इकट्ठी हो गई। एक बूढ़ी-माँ ने कहा, "भागवान! गऊ-माँ की सेवा करते तुझे यह बालक मिला है। बड़ा सुलच्छना है यह! जैसे गाय सूखा घास खाकर अमृत जैसा दूध देती है, वैसे ही यह बालक निष्काम सेवा करेगा। गाय की तरह ही परोपकारी, देश हितैषी और जाति का रक्षक होगा।"

यह घटना १६ अप्रैल १८६४ ईस्वी की है। तब से अब अस्सी बरस बीत गये। कौन जानता था कि बूढ़ी-माँ की यह भविष्यवाणी सर्वथा सत्य सिद्ध होगी। ऐसी बातें तो हर किसी के जन्म पर कह दी जाती हैं।

होशियारपुर से दो-तीन मील के अंतर पर एक छोटा-सा ऐतिहासिक कस्बा बजवाड़ा है, यह कभी व्यापार का भारी केन्द्र था। तब होशियारपुर की कोई हैसियत न थी। बजवाड़ा ही सर्वप्रसिद्ध था। [illegible] अंग्रेजों के कब्जा कर लेने के बाद भी [illegible] का [illegible] और शोभा निखरती थी। इसी भूमि को महात्मा हंसराज जी का जन्म-स्थान होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरी आखें उस पवित्र भूमि को देखने के लिये तरस रही थीं, जहाँ पहली बार महात्मा जी ने आँखें खोली थीं।

खेलने के दिन

बजवाड़ा के ठीक मध्य में एक टूटे-से मकान की ओर संकेत कर किसी ने कहा, "यहीं हंसराज पैदा हुआ।" मकान टूट गया, लेकिन, हंसराज अमर हो गया और उसकी अमरता मुझे उसके चारों ओर खेलती दिखाई दी।

एक वृद्ध सज्जन कहने लगे, "बचपन में हंसराज सब का सरदार बन कर रहता था। वह कुछ लड़कों की एक टोली बना लेता और उनका कप्तान बन कर सब के साथ खेलता।" दूसरे महानुभाव ने बतलाया, "हंसराज पत्थर और बिल्लौर की गोलियों से खेलता था और खूब निशाना लगाता था। पढ़ने में चतुर, उदास होता न घबराता। एक बार कस्बे के नन्हें बालकों की आपस में ठन गई। दो दलों मे वह लड़के आमने सामने डट गये। एक दल का कप्तान हंसराज था। लड़ाई बस छिड़ा ही चाहती थी कि हंसराज ने कहा, हाथो की लड़ाई न होगी, जो दल अधिक शैर (पद) सुनाये, वही जीते। बस, मारधाड के स्थान पर शैरों की झड़ी लग गई।"

एक बूढ़ी-माँ ने बताया कि जब हंसराज प्राइमरी मे पढ़ता था, तो उस की सास ने एक खत पढ़ने के लिये हंसराज को बुलाया। खत उसने पढ़ दिया तो माता जी ने कहा, "हंसराज! तू दूसरों के ही खत पढ़ा करता है, अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान नही देता।" तब हंसराज ने कहा, "माता जी! जितना पढ़ा है, यदि वह दूसरों के काम नही आता, तो फिर पढ़ने का लाभ ही क्या है ?"

हंसराज आरम्भ में पढ़ाई की ओर बहुत कम ध्यान देते। प्राय. कहते कि पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु, जब स्कूल मे उन्हें जबर्दस्ती भेज दिया गया, तब पढ़ाई में इतने चमके कि और धुंधले पड़ गये। जो कुछ पढ़ते, स्कूल में ही। घर आकर पुस्तक को हाथ न लगाते। किन्तु, श्रेणी में सदा प्रथम रहते।

बचपन से ही संध्या बड़े चाव से करते। यह उनके पूज्य पिता लाला चूनीलाल जी के संस्कारों का प्रभाव था। वह अधिकतर

स.धु-संतों की संगति में रहा करते। हंसराज भी उनके साथ रहते। प्रभु भक्ति का बीज तभी उनके मन में आरोपित हो गया था।

लाला चूनीलाल बहुत ही स्वतन्त्रता-प्रिय महानुभाव थे। किसी के आधीन रहना उन्हें पसन्द न था। इसी लिए सरकारी नौकरी छोड़ अपील-नवीस बन गये। सरदार बहादुर मुंशी अमींचन्द मोहतमिम बन्दोबस्त लाला जी के सहपाठी थे। उन्हें पता लगा तो लिखा, ' मेरे पास आ जाइये। मैं आप को तहसीलदार के पद पर लगवा दूंगा।" परन्तु, लाला चूनीलाल ने उत्तर दिया—

"हक्का के बा अक़्बते दोजख बराबरस्त
रफ्तन बपाये मर्दिए हमसाया दर बहिश्त"

[किसी पड़ौसी की सहायता से स्वर्ग मे जाना नर्क मे जाने क तुल्य है।

बालक हसराज पर पिता की स्वातन्त्र्य-प्रियता और प्रभु-भक्ति गहरे संस्कार छोड़ रही थी। ग़रीबी और निर्धनता के बावजूद अपनी प्रतिष्ठा एवं स्थिति बनाये रखने की भावना तभी उसके मन में प्रबल हो उठी थी। तभी उसने सीख लिया कि तपस्या ही जीवन है। और उसके तपस्वी जीवन का आरंभ तब से होता है, जब बालक हंसराज बजवाड़े से होशियारपुर पढ़ने के लिये जाने लगा। दोनों नगरों के बीच एक चौड़ा रेतीला मैदान है; जिस में छाया का कोई प्रबंध नही। दोपहर के समय स्कूल में छुट्टी होती तो, चिलचिलाती धूप में हंसराज घर की राह लेता। प्राय: पांव में जूता नहीं होता था। भरी-दोपहरी की जलती धूप में तपती रेत नन्हे बालक के कोमल पॉव जला-जला डालती। तब हंसराज लकड़ी की तख्ती पांव तले रख कर खड़ा हो जाता

इस से जलन कुछ कम होती और वह फिर बढने लगता । इस तरह जब-जब सेक असह्य हो उठता, वह योंही 'सुस्ता' लेता ।

बचपन की इस तपस्या ने ही हंसराज को जीवन की तपस्या के लिये तैयार कर दिया ।

घर-गिरस्ती

हंसराज जी अभी बारह ही बरस के थे कि १४ फर्वरी, १८७६ ईस्वी को उन के पिताजी का देहांत हो गया । पिता जी की लंबी बीमारी ने घर की बची-खुची पूंजी भी नि शेष कर दी । हंसराज जी के बडे भाई लाला मुल्कराज जी उस समय गवर्नमैंट हाई स्कूल होशियारपुर में पढते थे । घर में कमाने वाला कोई न था ।

मृत्यु से छः बरस पहले १८७० में लाला चूनीलाल जी ने हंसराज जी की सगाई लाला कृपाराम जी की सुपुत्री ठाकुर देवी से कर दी थी और विवाह का दिन भी नियत कर दिया गया था । इसी बीच लाला कृपाराम जी चल बसे । लाला चूनीलाल जी ने मरते समय विवाह का दिन न बदलने को कहा और इन दोनों के निधनों के बावजूद अप्रैल १८७६ में हंसराज जी का विवाह हो गया ।

अगले ही बरस, १८७१ में हंसराज जी के बड़े भाई लाला मुल्कराज जी ने एंट्रेंस की परीक्षा पास कर ली । आपको आठ रुपया मासिक छात्रवृत्ति भी मिली । इसीसे लाभ उठाते हुए आप लाहौर के एक कालिज में दाखिल हो गए । हंसराज जी भी लाहौर पहुंचे और क्रिश्चियन स्कूल में दाखिल हो गये । लाला जी ने तो नौ मास के बाद कालिज छोड़ दिया और डाकखाने में काम

करने लगे। परन्तु, हंसराज जी ने पढ़ाई जारी रखी। १८७५ मे आपने वर्नाक्यूलर फाइनल की परीक्षा पास कर ली।

हंसराज जी अपनी श्रेणी मे सदा प्रथम रहते। उनकी बुद्धिमत्ता की कितनी ही बातें सुनने में आई है। एक बार वह मुन्शी गुलाबसिंह (मुफीद आम प्रेस वाले) के पास गणित की पुस्तक खरीदने गये। मुन्शी जी ने ऐसे ही मजाक से कहा, यदि एक प्रश्न हल कर दो तो, पुस्तक तुम्हे मुफ्त मिल जायगी। हंसराज जी ने यह शर्त मान ली और एक कठिन प्रश्न को झट हल करके पुस्तक मुफ्त प्राप्त कर ली।

इन दिनों की एक बात उल्लेखनीय है। जिन दिनो यह दोनों भाई शिक्षा प्राप्ति के लिये लाहौर आये, उन्हीं दिनों अर्थात् १६ अप्रैल १८७७ को महर्षि स्वामी दयानन्द दिल्ली, लुधियाना, जालन्धर आदि से होते हुए लाहौर पधारे। स्वामी जी के व्याख्यानों से सारे लाहौर में धूम मच गई थी। तभी आर्य समाज की भी स्थापना हुई।

होनहार बिरवान

बचपन में धर्म-प्रेम का जो रङ्ग चढ़ा था, वह मिशन-स्कूल में एक ऐसी घटना बन कर निखरा, कि जिसका कोई स्वप्न भी ले न सकता था। मिशन स्कूल में प्रायः हिन्दू-धर्म, हिन्दू-ग्रन्थों और हिन्दू जाति का मजाक उड़ाया जाता। हिन्दू-विद्यार्थियों को पथ-भ्रष्ट करने के लिये हिन्दू-धर्म पर भद्दे आक्षेप किये जाते। तब आज के दिन न थे। न तो इतनी शिक्षा थी और न निर्भीकता ही। निज-गौरव और आत्माभिमान का किसी को ध्यान न था। यदि ध्यान था तो, प्रतिकार का साहस न था।

एक दिन स्कूल के इसाई मुख्याध्यापक मिस्टर आर० सी० दास ने वैदिक धर्म और हिन्दू सभ्यता पर बहुत ही अनुचित और भद्दे आक्षेप किये। कहा कि प्राचीन काल में आर्य ईश्वर के स्थान पर अनेक देवी-देवताओं की पूजा करते थे। सूर्य के आगे माथा रगड़ते थे। मिशन स्कूल में यह कोई अनोखी बात न थी। परन्तु, नवीं कक्षा का एक विद्यार्थी हंसराज इसे सह नहीं सका। उसने तत्काल उठकर कहा, "आप गलत कह रहे हैं। प्राचीन आर्य केवल एक ईश्वर के उपासक थे।" और न केवल अपने कथन की पुष्टि मे कई उद्धहरण दे दिये, अपितु लगे हाथों इसाई मत पर आक्षेप भी कर दिये।

तब मिशन स्कूल के मुख्याध्यापक के सम्मुख एक छोटे बालक का यह साहस निश्चय ही, आश्चर्यजनक था। मुख्याध्यापक स्तम्भित रह गया। अन्य विद्यार्थी दांतों तले अंगुली दिये हंसराज की ओर देखने लगे। मुख्याध्यापक यह सब देख-सुन कर आग-बगूला हो उठा। हंसराज पर बेंतों की बौछार होने लगी और उसे श्रेणी से निकाल दिया गया।

हंसराज कोई साधारण विद्यार्थी न था। थोड़े ही दिनों में मुख्याध्यापक ने अनुभव किया कि एक होनहार विद्यार्थी मैंने खो दिया। सद्विचारों से प्रेरित होकर उसने स्वयं हंसराज को बुला भेजा और उसे फिर स्कूल में दाखिल कर लिया।

बात तो निबट गई; परन्तु, यह सब विद्यार्थियों की आँखें खोल गई। तभी हंसराज जी के मन में इस बात ने घर कर लिया कि हिन्दुओं की कोई अपनी शिक्षा-संस्था होनी चाहिये, जिसमें वे सम्मानपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर सकें।

चीकने पात

हंसराज जी ने अभी एंट्रेंस पास नहीं किया था कि उनके भाई लाला मुल्कराज जी को तब्दील होकर मुलतान जाना पड़ा। अब हंसराज जी साधारण किराये की एक बहुत ही छोटी कोठरी में रहने लगे। इसमें कठिनाई से एक व्यक्ति पड़ सकता था। १८८० में उन्होंने कलकत्ता यूनिवर्सिटी की एंट्रेस-परीक्षा पास कर ली। तब पञ्जाब यूनिवर्सिटी एक साधारण सी संस्था थी और इसी द्वारा पञ्जाब और कलकत्ता दोनों यूनिवर्सिटियों की परीक्षायें पास की जाती थीं। परन्तु, उन दिनों पढ़े लिखों का आज-सा अनादर न था। ग्रेजुएट बन जाने पर उच्च सरकारी पद तत्काल मिल जाता था। नौकरियों की तो कोई कमी ही न थी। १८८० में सरकार ने तीन ग्रेजुएट-युवकों को सिविल सर्विस के लिये चुन कर एक्स्ट्रा अमिस्टैन्ट कमिश्नर बनाया था। तब भारतीयों के लिये सब से उच्च पद यही था। हंसराज जी भी १८८५ में बी० ए० की परीक्षा पास कर ग्रेजूएट बन गये। पञ्जाब भर में वह दूसरे दर्जे पर रहे। संस्कृत और इतिहास में आपने विशेष योग्यता प्राप्त की।

उनके सहपाठियों और कालिज के साथियों में राजा नरेन्द्र नाथ, पण्डित गुरुदत्त जी विद्यार्थी, लाला लाजपतराय जी, प्रोफेसर रुचिराम जी साहनी, रायबहादुर संसार चन्द्र, खान बहादुर शेख ईनाम अली, राय शम्भूनाथ इंजीनियर, रायबहादुर कुञ्जबिहारी लाल थापर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। लाला लाजपतराय, पंडित गुरुदत्त और राजा नरेंद्र नाथ से तो उन की घनिष्ठ मित्रता थी।

अध्ययन-काल से ही हंसराज जी सार्वजनिक कार्यों में रुचि रखते थे। घर में निर्धनता थी। पढ़ाई का ख़र्च लाला मुल्कराज जी देते थे और कुछ वह स्वयं ट्यूशनों द्वारा पूरा करते। उनका निजि खर्च तो बहुत ही कम था। इन सब आड़ी-टेढ़ी परिस्थितियों के बावजूद उन्होंने कभी अपने मन में निर्बलता को पनपने नहीं दिया। ग़रीबी में रहते हुये भी अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखा।

तब बी० ए० पास कर लेना ई० ए० सी० बन जाने के बराबर था। यदि हंसराज जी चाहते तो अपने मित्र राजा नरेंद्र-नाथ जी की तरह डिप्टी कमिश्नर और फिर कमिश्नर बन कर अपनी निर्धनता मिटा डालते। घर के लोग उस दिन की प्रतीक्षा में थे, जब हंसराज जी ग्रेजूएट बनकर दौलत से खेलने लगें अथवा कोई सरकारी नौकरी स्वीकार कर घर के कष्ट मेट डाले।

परन्तु—

सूर्य के प्रकाश को कोई समेट नही सका। नदी एक खेत को सिंचित नही करती। बादल एक पर्वत पर नहीं बरसता।

और—

घर की आशायें, संबंधियों की उमंगे, मन के भाव हंसराज को कैद नहीं कर सके।

आर्य-समाज

गाँव का सीमित वातावरण त्याग कर जब हंसराज जी नें शहर का विस्तृत जीवन अपनाया तो, उनके संस्कार भी फैलने लगे, मन पर सद्विचारों का रंग गहरा होने लगा।

खेलने के दिनों में उन्होंने भगवान से लौ लगाई थी, इसलिये, सेवाकार्यों को ओर उनका झुकना स्वाभाविक था। अजनोहा[1] में पहली बार उन्होंने आर्य समाज का नाम सुना।

---

1. जिला होशियारपुर का एक छोटा सा गाँव

वहीं पर उन्होंने गायत्री मंत्र भी सीखा और इसका नियमित रूप से पाठ करने लगे। वह बतलाया करते कि पहले वह केवल पांच सौ मत्रों का जप किया करते थे। बाद में संख्या बढ़ा दी गई थी। गायत्री-मंत्र उन्हें बहुत प्रिय था। उस सम्बन्ध में जब मैंने उनसे अपना अनुभव कहा तो वह कहने लगे, "गायत्री मंत्र है ही ऐसा। इसके अर्थों का पूरा ध्यान रखकर जो मन ही मन इस का उच्चारण करता है, उसे अवश्य लाभ होता है।"

लाहौर में जब आप मिशन-स्कूल में दाखिल हुये तो भी आपने गायत्री मंत्र का जप नहीं छोड़ा। और जब आर्यसमाज लाहौर के पहले मंत्री स्वर्गीय लाला साईंदास जी से आपने भेंट की तो वह बहुत प्रभावित हुए। लाला साईंदास ने इस नव-युवक में एक विशेष आकर्षण अनुभव किया और उन्होंने हंसराज जी को आर्यसमाज का सदस्य बना लिया। लाला साईंदास थे तो सरकारी कर्मचारी परन्तु, आर्य समाज के लिये उनके दिल में गहरा प्रेम था। लाला लाजपतराय जी को आर्य समाज में लाने वाले भी यही थे।

डगमगाती नैया

यह वह दिन थे, जब पश्चिम की हवाये हिंदुस्तान में चलने लगी थीं। इसाई पादरियों के प्रचार ने हिंदु-नवयुवकों को हिंदु-धर्म से दूर कर दिया था। तब 'पालिटिक्स' नाम की कोई चिड़िया समाज के कानन में चहकती न थी। धार्मिक व्याख्यानों की भरमार अवश्य थी। ढेरों लोग इन में दिलचस्पी लेते। नव-युवकों के मन डांवाडोल, उन के विचारों में अस्थिरता, विश्वास में कम्पन और आत्म बल का अभाव था। परखने वालों ने

परखा कि नदी में बाढ़ आ रही है। उन्हें खटका हुआ, क्या वे अपने वंशजो को काबू में रख सकेंगे?

अंधकार में ज्योति-किरण फूटी। लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना हुई। लोगों ने सुख का साँस लिया कि अब तो पश्चिम की बाढ़ उनके नवयुवकों को बहा नहीं ले जा सकेगी। यदि तब, आर्यसमाज हाथ दे उभार न लेता तो देश के बड़े बड़े परिवारों के पतित हो जाने की सम्भावना थी। बूढे-बुजुर्ग स्वयं कमज़ोर हो चुके थे। शिक्षित सम्प्रदाय की रुचि अधिकतर फारसी और इस्लाम की ओर थी। और तो और लाला लाजपत-राय जी के पिता मुंशी राधा किशन नमाजें पढ़ते और रोज़े रखा करते।

परन्तु, आर्य-समाज की स्थापना ने हवा का रुख बदल दिया। जब महर्षि दयानन्द और आर्य-समाज के सेवकों ने पुण्य-प्राचीन सनातन धर्म का वास्तविक रूप संसार के सामने रखा, जब एक ईश्वर की भक्ति और सामाजिक सुधार की बाते लोगों को बताई, तो सब की आँखें खुल गईं। जो नवयुवक वैदिक धर्म से घृणा करने लगे थे, वह इस के अनन्य भक्त और दृढ-विश्वासी बन गये। स्वर्गीय लाला साईंदास जी कितने ही नवयुवकों को आर्य समाज के समीप लाने के साधन बने। उन्हें आर्य-समाज कभी भूल नही सकता।

पतवार

नवंबर १८८२ का वह दिन किसी को नहीं भूलेगा, जब लाला लाजपत राय जी पहली बार आर्य समाज के उत्सव में पधारे। लाला साईंदास जी ने उन्हें देखते ही कहा, "हम तो बहुत देर से आप की प्रतीक्षा कर रहे थे।" और अपनी ओज-

पूर्ण आँखें उन की दिव्य आँखो में गाड़ दीं। बोले, "आर्यसमाज को आप की जरूरत है, उस के सदस्य बन जाओ।" लाला साइ दास ने प्रवेश पत्र अपनी जेब से निकाला और लाला लाजपतराय जी ने उस पर तत्काल हस्ताक्षर कर दिये। पंडित गुरुदत्त जी भी उन्हीं दिनो आर्य-समाज में प्रविष्ट हुये।

उपरोक्त उत्सव की समाप्ति पर आर्य प्रैस के मालिक लाला सालिगराम जी ने सुझाव रखा कि आर्य-समाज के प्रचार के लिये उर्दू और अग्रेज़ी मे दो पत्र जारी किये जायें; जिनका खर्च वह देंगे। महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, पंडित गुरुदत्त और लाला शिवनाथ ने इस प्रस्ताव से सहमत हो कर एक अग्रेजी पत्र प्रकाशित करने का प्रबध करना स्वीकार किया। पत्र का नाम 'रीजेनेरेटर आफ आर्यवर्त' रखा गया। हंसराज जी इसके अवैतनिक प्रबंधक तथा सहायक संपादक नियुक्त हुये। उन के पहले ही लेख ने पाठकों को सजग कर दिया। अंग्रेज़ी-भाषा मे उनके धाराप्रवाह और प्रगति-शील विचार शिक्षित नवयुवकों को अपनी ओर आकर्षित करने लगे।

इन्ही दिनों हंसराज जी ने महर्षि दयानन्दकृत वेदभाष्य का अध्ययन भी आरम्भ कर दिया। स्वामीजी के आगमन से पहले तो वेद गडरियों के गीत समझे जाते थे, असख्य देवी-देवताओं की किस्से-कहानियां और या फिर असभ्य समय की एक असभ्य पुस्तक। परन्तु युगांतरकारी महर्षि ने तमपट हटा कर एकबार फिर संसार को वेदों के सत्य-प्रकाश से चमत्कृत कर दिया। श्री अरविंद घोष ने लिखा—

"जिस वेद को भाष्यकारों की मूर्खता के कारण असभ्य पुस्तक समझा जाता था, उसी वेद को, महर्षि दयानन्द ने

प्रमाणित कर दिया कि यह ईश्वरीय ज्ञान है। इसमे न केवल एक ईश्वर की भक्ति का उपदेश है, अपितु समस्त ज्ञानों का ज्योतिस्तंभ वेद ही है। सृष्टि के आरंभ मे संसार के लोगो के पथ-प्रदर्शन के लिये परमात्मा ने ऋषियों के हृदय मे इसका प्रकाश किया। ऋषि दयानन्द ने प्राचीन प्रणाली से वेदों के अर्थ किये और वेद को स्वतःप्रमाण मान कर वेद द्वारा ही वेद के अर्थों को स्पष्ट किया। स्वामी दयानन्द का यह सिद्धांत है और यह वेद से सिद्ध होता है कि एक ही परमात्मा को तरह तरह के नामों से पुकारा गया। और हमे यह मानना पड़ता है कि वेद मे अग्नि आदि नम किसी देवता के नही, अपितु परमात्मा के विशेषण है। इस लिये सायन ने वेद से जो गल्प-गाथायें और देवी देवताओ की पूजा निकाली, वह सत्य नही। योरुपियन लोगों का यह विचार भी, कि वेद मे केवल धार्मिक स्वर्गिक बातो की ही चर्चा है, मिथ्या है। वेद मे ईश्वर-भक्ति, विज्ञान और दार्शनिकता सब कुछ है। वेद भूल-रहित और ईश्वरीय पुस्तक है।'

जब हंसराज जी ने स्वामी जी का भाष्य पढ़ा और इसके साथ उनके अन्य ग्रन्थ ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका, सत्यार्थ-प्रकाश आदि का मनन किया तो उनकी वेदों पर श्रद्धा और भी बढ़ गई। कालिज के दिनों मे ही उनके दिल पर अपने देश, धर्म, जाति और सारे संसार की घमौनी दशा का प्रभाव पड़ने लगा। प्राचीन इतिहास और ऋषिकृत पुस्तकें पढ़ने पर तो उनके मन में अजीब ऊहापोह और उतार-चढ़ाव होने लगा। एक अनोखे

मानसिक उद्वेलन में वह विचरने लगे । नदी का पानी किनारे तोड़ने लगा ।

इक जन जाय

लाहौर में आर्य समाज को स्थापित हुए अभी छः ही बरस हुए थे । इन छः बरसों में आर्य-समाज के सेवकों को बहुत कठिनाइयों और बाधाओं का सामना करना पड़ा । रूढ़िवादियों ने भीषण विरोध किया । पंजाब मे जहाँ कही आर्यसमाज की स्थापना हुई, वही बिरादरियों ने उनका वहिष्कार कर दिया। हुक्का-पानी बन्द । रिश्ते-नाते छूट गये । आर्यसमाजियों को नास्तिक कहा जाता । गालियों की बौछार होती । पग-पग पर कांटे बिछाए जाते । दूसरी ओर इसाइयो तथा अन्य विधर्मियों का भारी वैमनस्य एवं विरोध । अपनो और बेगानों दोनों से उलझना पड़ा ।

तभी अजमेर से हृदय विदारक समाचार आया कि महर्षि दयानन्द को जोधपुर मे किसी ने ज़हर दे दिया और ३० अक्तूबर १८८३ की सध्या को जब संसार दीवाली के दीपक जला रहा था, 'प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो ।' कह कर एक दिव्य दीपक अनन्त प्रकाश फैला निर्वाण को प्राप्त हुआ। पंडित गुरुदत्त जी और लाला जीवनदास जी अजमेर गये हुए थे । उनके लाहौर लौटने पर आर्यसमाज के सामने महर्षि की स्मृति को चिरस्थायी और लाभप्रद बनाने का प्रश्न उठा । हंसराज जी के पत्र 'रीजेनेरेटर आफ आर्यवर्त' में लाला मदनसिंह जी ने लिखा, "महर्षि दयानन्द ने भारत में जो महान् कार्य किया, उसने शिक्षित और समझदार लोगों के दिलों में महर्षि के प्रति गहरी सहानुभूति भर दी है.. उनका स्मारक उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप होना चाहिए

और वह एक कालिज से कम कुछ भी नहीं हो सकता। दयानन्द कालिज ही उनका सर्वोत्तम स्मारक बन सकेगा।"

महर्षि के निर्वाण के नौ दिन बाद ८ नंवम्बर १८८३ को लाहौर में इस अभिप्राय से एक सभा हुई कि ऋषि का स्मारक क्या हो। इसमें एक दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज और स्कूल खोलने का निश्चय किया गया। सभा में ही सात हज़ार रुपया भी जमा हो गया। इस निश्चय को क्रियात्मकरूप देने के लिये लाला लालचन्द जी एम० ए० ने धनार्थ अपील की। उन्होंने कहा, "महर्षि का कार्य केवल आर्यों के लिये नहीं था, अपितु सारे भारतवर्ष के लिये। स्वामी जी का लक्ष्य वेदों का प्रचार था, जिसके लिये उन्होंने समस्त प्रयत्न किये। भारत की दुर्दशा देखकर महर्षि का दिल पिघला और उसके सुधार के लिये उन्होंने अपना जीवन लगा दिया। भारत के सुधारकों मे उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। वह महात्मा अब नहीं रहे। इसलिये आवश्यक है कि उनका स्मारक स्थापित किया जाय। इसी उद्देश्य से दयानन्द कालिज स्थापित करने का निश्चय किया गया है, जहां पाश्चात्य विद्या के साथ पूर्वी ज्ञान और विशेष कर वेदों की शिक्षा दी जा सके।"

इसके पश्चात राय बहादुर लाला लालचन्द जी ने सब आर्य-समाजों के नाम एक गश्ती-चिट्ठी भी भेजी, जिसमें लिखा, "हम एक ऐसी संस्था स्थापित करना चाहते है, जिसमे वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के अवगुणों को त्याग कर केवल गुणों को ही ग्रहण किया जायगा। संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा द्वारा शिक्षित और अशिक्षित वर्ग का मिलाप कराया जायगा और ऋषियों के ग्रन्थ पढ़ाकर परमात्मा और आत्मा की उलझने सुलझाई जायंगी।

शिल्प का भी प्रबन्ध किया जायगा।"

इस के बाद दयानन्द कालिज की योजना तैयार हुई। कालिज के प्रिंसीपल का वेतन पांच सौ रुपया मासिक और स्कूल के मुख्याध्यापक का अढ़ाई सौ रुपया मासिक नियत हुआ। योजना पूर्ति के लिये आठ लाख रुपये का अनुमान लगाया गया। परन्तु, खेद कि भरसक कोशिशों के बावजूद दिसम्बर के अंत तक दस हज़ार से अधिक रुपये जुट न सके।

दूजा आय

हंसराज जी बी० ए० पास कर चुके थे। उन का स्वभाव आरम्भ से ही स्वतन्त्रता-प्रिय था। इस लिये किसी सरकारी-नौकरी का तो वह विचार तक न कर सकते थे, यद्यपि बड़े बड़े सरकारी-पद उन के पाँव चूमने को लालायित थे। उन के मन में किसी अच्छी रियासत का प्रधान मन्त्री बनने की लालसा ज़रूर जगी थी, परन्तु, जब उन्हें पता लगा कि महर्षि दयानन्द की स्मृति में जो दयानन्द स्कूल और दयानन्द कालिज स्थापित करने का निश्चय हुआ है, वह धनाभाव के कारण पूरा नहीं हो रहा, तब प्रधान-मन्त्री पद की लालसा पर एक महान् त्याग का भाव छाने लगा। रह-रह कर उन के मन में यही प्रश्न उठता कि जिस महर्षि ने लोक-कल्याण के लिये अपना जीवन बलिदान कर दिया, उसके ध्येय को सफल बनाने के लिये क्या मैं कुछ नहीं कर सकता?

तब उन्हों ने दस रुपये की एक तुच्छ भेंट कालिज-कोष में दी। उन दिनों उन के लिये दस रुपये दे देना कोई सहल न था। परन्तु, मन तो किसी और बात के लिये मचल रहा था। इतने-

से बलिदान से वह संतुष्ट नहीं हुआ। नदी के प्रबल वेग की तस्कीन किनारे की मिट्टी गिराने में न थी।

एक दिन वह अकुला उठे। घरेलू आवश्यकताओं के अभाव के कारण नहीं; माँ की ग़रीबी, भाई की बेबसी से नहीं; अपने जीवन की आहुति देने के लिये। वह अपने बड़े भाई लाला मुल्कराज जी के पास पहुंचे। कहने लगे, "यह बहुत ही दुख और खेद की बात है कि दयानन्द कालिज जैसा कल्याणकारी काम धनाभाव के कारण शिथिल पड़ रहा है। मैं अपना जीवन इस काम को पूर्ण करने के लिये अर्पण करना चाहता हूं। मेरी इच्छा है कि एक पैसा लिये बिना अपना जीवन कालिज को दान कर दूं; परन्तु, यह काम आप की सहायता के बिना हो नहीं सकता।"

बड़े भाई ने राम बन कर लक्ष्मण की बात सुनी। लाला मुल्कराज जी बहुत दूरदर्शी थे। छोटे भाई की शुभकामना जान कर मन ही मन पुलकित हुये। उन दिनों लाला जी को अस्सी रुपये मासिक वेतन मिलता था। इसमें से आधे, चालीस रुपये, उन्होंने हंसराज जी के लिये 'रिज़र्व' कर दिये।

दोनों भाइयों ने त्याग का निश्चय कर लिया, एक ने अपने कुल जीवन के बलिदान का और दूसरे ने अपनी आधी आय का। इन गये-बीते दिनों में दोनों भाइयों का प्रेम भी एक अपवाद है। इस निश्चय से सूचित करने के लिये जब आर्य-समाज लाहौर के प्रधान महोदय को पत्र लिखा गया, तब हंसराज जी की आँखें दर्द करती थीं। इस लिये यह पत्र मुल्क-राज जी ने ही लिखा। हंसराज जी ने केवल हस्ताक्षर ही किये। पत्र में लिखा था, "दयानन्द स्कूल खुलने पर मैं अवैतनिक मुख्याध्यापक बनने के लिये तैयार हूं।"

इस संक्षिप्त से पत्र ने आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं में उत्साह फूंक दिया। आड़ी-टेढ़ी परिस्थितियों के कारण वे प्रायः निराश हो चुके थे। पत्र पढ़ कर उन्हें नवजीवन मिल गया। यह आनंदवर्द्धक समाचार शीघ्र ही हर ओर फैल गया। ३ नवम्बर १८८५ को यह पत्र आर्य समाज की अंतरंग सभा में रखा गया, जहाँ हंसराज जी का 'जीवनदान' सधन्यवाद स्वीकार कर लिया गया।

एक बार महात्मा जी ने मुझे बताया कि "जिस दिन जीवन-अर्पण का मैंने निश्चय किया और भाई साहब ने स्वीकृति भी दे दी, तो उस रात देर तक मुझे नींद नहीं आई। आसन लगा कर मैं प्रभु-भजन में लगा रहा। गायत्री का जाप करते करते एक ऐसी ज्योति मेरी मुंदी आँखों ने देखी कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। मैंने अनुभव किया कि मेरा आत्मा ऊपर उठ रहा है। वैसा आनन्द प्राप्त करने के लिये जीवन बार बार आग्रह करता है।"

जिस-जिस ने महात्मा हंसराज के जीवन-अर्पण की बात सुनी, उस-उस ने नया बल प्राप्त किया और यह विश्वास सजग होने लगा कि दयानन्द का ध्येय पूरा होगा, अवश्य सफल होगा।

नदी किनारों की क़ैद तोड़ कर खेतों को सींचने लगी।

जोत जली

आयु-पर्यंत दयानन्द कालिज के लिये काम करने की प्रतिज्ञा लेकर महात्मा हंसराज ने कालिज-स्थापना कार्य को एक सजीव आंदोलन का रूप दे दिया। ३१ जनवरी १८८६ को आर्य-समाज लाहौर के निमंत्रण पर सब प्रमुख आर्यसमाजों के प्रतिनिधि एकत्रित हुये। दयानन्द कालिज ट्रस्ट और दयानन्द कालिज

मैनेजिंग कमिटि बना दी गई। मैनेजिंग कमिटि की पहली बैठक २७ फर्वरी १८८६ को हुई। २० मार्च को चुनाव भी हो गया। रायबहादुर लाला लालचन्द पहले प्रधान और लाला मदनसिंह पहले मन्त्री चुने गये।

उस समय तक कुल २४,८६८ रुपये जमा हुए थे। इसी से दयानन्द एंग्लोवैदिक हाई स्कूल जारी करने का निश्चय हो गया और १ जून १८८६ को आर्यसमाज लाहौर के भवन में स्कूल जारी कर दिया गया। श्री महात्मा हंसराज जी इसके अवैतनिक मुख्याध्यापक नियुक्त हुये।

यह समाचार जब मिशन स्कूल के योरुपियन-हैडमास्टर ने सुना तो हैरान होकर पूछने लगा, "एक नवयुवक, जो कल तक हमारे स्कूल में पढ़ता था, किस तरह इतनी भारी जिम्मेदारी निभा सकेगा ?" यह आशंका तब कुछ सत्य भी मालूम होती थी, क्योंकि तब भारत-भर में कोई भारतीय हिन्दू किसी स्कूल का मुख्याध्यापक न होता था। आज तो हर ओर भारतीय अफ़सर, अधिकारी, मुख्याध्यापक, प्रिंसिपल, प्रधान-मंत्री और गवर्नर तक देखने में आते हैं। परन्तु, १८८६ में यह बात न थी। हंसराज जी पहले भारतीय हिन्दू मुख्याध्यापक थे। इन्हीं दिनों आपने सरकार को मैमोरियल भेजने की सम्मति दी कि भारतीयों को हाईकोर्ट का जज नियुक्त किया जाय।

केवल पांच दिनों में स्कूल में तीन सौ विद्यार्थी दाखिल हो गये। इस आश्चर्यजनक उन्नति का उल्लेख करते हुये अपने ५ जून १८८६ के अंक में 'ट्रिब्यून' ने लिखा, "हमें मुख्याध्यापक महोदय पर पूर्ण विश्वास है, जिन्होंने अपने आराम, सुख और नाम की तनिक भी अपेक्षा न करते हुए अपना जीवन इस काम

के लिए अर्पण कर दिया है।" दयानन्द स्कूल ने शिक्षा-विभाग से सबन्ध स्थापित करने के लिये कभी प्रार्थना नहीं की, और न ग्रांट (सहायता) लेने की इच्छा प्रकट की।

इस स्कूल की स्वीकृति प्राप्ति की कहानी भी दिलचस्प है।

दयानन्द स्कूल के परीक्षा-परिणाम बहुत उत्तम निकलते थे। मिडल-परीक्षा में कई विद्यार्थियों को छात्र वृत्तियां प्राप्त हो गई। एक दिन सुबह के समय शिक्षा-विभाग के डायरैक्टर ने हंसराज जी को सूचित किया और बाद में लिखा भी कि छात्र-वृत्तियां केवल स्वीकृत स्कूलों के विद्यार्थियों को ही मिल सकती हैं। डायरैक्टर महोदय ने यह भी सकेत किया कि केवल स्कूल का निरीक्षण करा लीजिये, स्वीकृति मिल जायगी । अगले दिन प्रात· शिक्षा-विभाग का निरीक्षक निरीक्षण करके गया और शाम को स्कूल की स्वीकृति प्राप्त हो गई।

लौ उठी

स्कूल की सफलता के बाद कालिज की श्रेणियां खोलने का विचार होने लगा। महात्मा जी नही चाहते थे कि केवल इस विचार से कि वह अवैतनिक काम करते है, उन्हें कालिज का प्रिंसिपल बना दिया जाय। लाला मुल्कराज लाला साईंदास के पास गये और उन्हें सम्मति दी कि पंडित गुरुदत्त को प्रिंसिपल बना दिया जाय। परन्तु, लाला साईंदास इस विचार से सहमत नही थे । पडित गुरुदत्त और महात्मा हंसराज जी दोनों सहपाठी और परम मित्र थे। किन्तु, स्कूल के सम्बन्ध में दोनों में तनिक मतभेद था । आखिर कालिज कमिटि ने महात्मा जी को ही प्रिंसिपल बनाने का निश्चय किया। १८८९ में कालिज की पढ़ाई नियमित रूप से आरंभ हो गई ।

स्कूल जारी करते समय कमिटी के पास लगभग पच्चीस हज़ार रुपया था। महात्मा जी के परिश्रम और बुद्धिमत्ता से कालिज जारी होने के समय यह धन-राशि एक लाख पांच हज़ार छः सौ रुपये हो गई। १८९० मे महात्मा जी को आर्यसमाज अनारकली का प्रधान और १८९१ में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रधान चुना गया।

हवा के झोंके

कालिज खुलने के तीन बरस बाद तक काम उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। परन्तु, तीन बरस के बाद इस वृक्ष पर भी फूट का फल फला। हिन्दुस्तान का यह कुख्यात मेवा कालिज कमिटि में फूट निकला। फूट की पत्तियां कभी संस्कृत पुस्तकालय का प्रश्न, कभी वेद-शिक्षा की समस्या, कभी इस झगड़े-बखेड़े, कभी उस उलझाव-सुलझाव का रूप धार पनपने लगीं। सितम्बर १८९३ में तो पराकाष्ठा हो गई। वृक्ष के दो तने हो गये। आर्यसमाज में दो दल स्पष्ट दीखने लगे।

दयानंद कालिज मैनेजिंग कमिटी में जिस दल का ज़ोर था, उसे 'कल्चर्ड' (सभ्य) कहते और आर्य समाज में जिस दल का बहुमत था वह 'महात्मापार्टी' कहाता। कितना शोचनीय था वह दिन, जब स्वर्गीय पंडित रामभजदत्त जी हाथ में झण्डा लेकर बड़ी भारी भीड़ के साथ दयानन्द कालिज की बिल्डिंग की ओर यह गीत गाते हुए आये "सदाकत के लिये गर जान जाती है तो जाने दो।" लाला साईंदास जी के सुपुत्र लाला गोपालदास जी उस समय कालिज के द्वार पर थे। उनके सिर पर किसी ने लाठी मारी और उत्तेजित भीड़ कालिज में बल-पूर्वक घुस कर ललकारने लगी, "कहाँ है, हंसराज?" "कहाँ है,

लालपतराय ?"

इन दोनों महानुभावों की रक्षा के लिये कालिज के नवयुवक आगे बढ़े। इन को तो चोट न आई; परन्तु, बहुत देर तक लाठी चलती रही। कितने ही लोग घायल हुए। महात्मा हंसराज और लाला लाजपतराय अन्तिम क्षण तक वहीं खड़े रहे। सख्त से सख्त व बुरे से बुरे शब्द तथा अपमान सहते रहे। महात्मा जी की गम्भीरता उस समय मूर्त्तरूप धारण किये थी।

इस दुःखदायी और खेदप्रद घटना के बाद दोनों दल बिल्कुल अलग हो गये। इनके नाम भी भिन्न हो गये। एक दल आर्य समाज अनारकली के नाम से और दूसरा आर्यसमाज वच्छोवाली के नाम से जाना जाने लगा। इस विभाजन को कुछ लोगों ने 'मांस' और 'घास' का प्रश्न भी बनाना चाहा; हालांकि मांसाहारी और निरामिष भोजनकारी दोनों दलों में पाये जाते थे।

१९०२ में जब गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना हुई तो फिर दोनों दलों के नाम 'कालिज विभाग' और 'गुरुकुल विभाग' प्रसिद्ध हुये। अब यह नाम भी सार्थक नहीं रहे, क्योंकि इस समय कालिज-विभाग वाले गुरुकुल और गुरुकुल-विभाग वाले स्कूल तथा कालिज स्थापित कर रहे हैं। नाम कुछ दे लीजिये, काम बिगड़ गया। फूट फूट पड़ी और आर्य समाज दो दलों में विभक्त हो गया।

लौ झुकी

इस फूट ने दो असर पैदा किये। एक बुरा, एक अच्छा। यदि फूट का कारण केवल विचारों का मतभेद होता तो, लज्जा जनक गाली-गलौच तथा कुत्सित मार पीट तक नौबत न पहुंचती।

जिनदिनों फूट का यह अंकुर फूटा, उन दिनों के समाचार पत्र बताते हैं कि कितनी घनौनी और पोच मनोवृत्ति का परिचय दिया गया। महात्मा जी तो गालियों का लक्ष्य बना दिये गये। यह उन्हीं का हौसला था। नित्य नई गालियां सुनते, नये तराशे हुए अभियोग पढ़ते; परन्तु, गम्भीरता की इस प्रतिमा ने कभी एक का भी उत्तर नहीं दिया। महात्मा हंसराज और कालिज-विभाग को खत्म करने के लिये ट्रैक्ट लिखे गये, प्लेटफ़ार्म पर भाषण दिये गये, समाचार पत्र प्रकाशित किये गये और उन के पन्नों के पन्ने उन्हें कोसने में भर दिये गये। इस तरह के निंदनीय साहित्य ने जन-साधारण के मन पर आर्य-समाज के विरुद्ध बहुत बुरा प्रभाव डाला।

एक घटना तो ऐसी है, जिसे आर्य समाज कभी भी भूल न सकेगा। दयानन्द कालिज जालंधर के निष्काम प्रिंसिपल स्वर्गीय पंडित मेहरचन्द जी ने बताया कि आर्यसमाज और दयानन्द कालिज के गुणों तथा बलिदानों को देखकर स्वामी रामतीर्थ एम० ए० ने निश्चय किया कि वह अपना जीवन आर्य-समाज को अर्पण कर दें। इसी अभिप्राय से उन्होंने आर्य-समाज और कालिज कमिटी को एक पत्र भी लिखा कि वह आजीवन सदस्य के रूप में दयानन्द कालिज में काम करेंगे और केवल दस रुपये मासिक लिया करेंगे। पत्र लिखने के बाद उन्होंने दूसरे दिन आर्यसमाजी कहलाने वाले एक समाचार पत्र में महात्मा हंसराज जी के विरुद्ध एक बहुत ही अनुचित लेख पढ़ा; जिसे पढ़ कर उन के दिल को भारी आघात पहुंचा और उन्होंने निश्चय किया कि जिस आर्य समाज में अपने सेवकों के प्रति यह बर्ताव होता है, उस में काम करना व्यर्थ है। फलतः,

आप ने आर्यसमाज की सेवा करने का विचार बदल लिया, और वेदांत की ओर झुक कर उस के प्रबल-प्रचारक बन गये।

स्वामी रामतीर्थ जैसा विद्वान् और प्रभु-भक्त यदि आर्य-समाज में काम करता तो, आर्यसमाज कितनी उन्नति करता। परन्तु, इस पिशाचिनी फूट ने एक अमूल्य रत्न खो दिया। महात्मा जी के विरुद्ध लिखने वाले उनका तो कुछ बिगाड़ न सके; किंतु स्वामी रामतीर्थ और उन जैसे अनेकों रत्नों से आर्य-समाज को वंचित कर गये। इस पाप का प्रायश्चित न जाने कितने बरसों में हो सकेगा।

तैल-सिंचन

फूट के वृक्ष को एक शुभ-फल भी लगा।

दोनों दलों में एक स्वस्थ और सुखकारी होड़ लग गई। दोनों ओर से अधिक से अधिक काम करने की कोशिश होने लगी। अब सारा बोझ महात्माजी के कंधों पर आ पड़ा। १८९३ में दोनों समाजें अलग हुईं और आर्य प्रतिनिधि सभा, पञ्जाब भी एक पक्ष में हो गई। इस अभाव पूर्त्ति के लिये आर्य-प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पञ्जाब, सिंध, बलोचिस्तान की लाहौर में नींव रखी गई। इस के प्रधान महात्मा हंसराज जी ही चुने गये। यह बस नींव-मात्र ही थी। वेद-प्रचार का सारा काम आर्यसमाज लाहौर और दयानन्द कालिज के प्रोफैसरों द्वारा ही होता था।

दयानन्द कालिज अपनों के विरोध की उपेक्षा करके उत्तरोत्तर उन्नति करने लगा। १८९६ में इञ्जीनियरिङ्ग क्लास शुरू हो गई। तब शिल्प (दस्तकारी) का काम भी सिखाया जाने लगा। सर्वप्रथम दर्ज़ी-क्लास खुली। आयुर्वैदिक-शिक्षा भी

प्रारम्भ हो गई। एक वैदिक आश्रम भी स्थापित किया गया। इन सब कार्यों का बोझ अकेले हंसराज के कंधों पर था।

एक हंसराज अनेक दायित्व संभाले था। एक ओर कालिज के प्रिंसिपल, दूसरी ओर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान और तीसरी ओर दयानन्द कालिज होस्टल के प्रधान सुपरिंटेंडेंट। कालिज के विद्यार्थियों का आप विशेष ध्यान रखते। प्रबन्ध-कार्यों में वह किसी की रियायत न करते; परन्तु, होस्टल के विद्यार्थियों के लिये स्नेही-पिता बन जाते। हर रोज़ होस्टल के विद्यार्थियों की पूछ-खबर उन की दिन-चर्या का आवश्यक अंग था। होस्टल के एक विद्यार्थी ने एक बार ज्वर के आवेग में 'माँ' पुकारा। महात्माजी की धर्म-पत्नी श्रीमति ठाकुर-देवी वहाँ पहुंच गई और माँ का वात्सल्य उंढेल कर उस युवक का दर्द कम कर दिया। एक बार एक और विद्यार्थी के गले में बहुत कष्ट हो गया। तब महात्माजी ने ठाकुर देवी जी के द्वारा लाहौर की एक देवी को बुलवाकर उसका इलाज करवा दिया। परदेसी विद्यार्थियों के लिये महात्माजी और ठाकुर देवी जी 'माता-पिता' बन जाते।

होस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों के धार्मिक-जीवन का भी वह पूरा ध्यान रखते। इसी उद्देश्य से आर्य युवक समाज की स्थापना की गई। सुबह-शाम नियमित रूप से संध्या-हवन होने लगा। शारीरिक-बल के लिये अन्य खेलों के साथ एक अखाड़े का भी प्रबन्ध किया गया, ताकि विद्यार्थी भारत की इस प्राचीन कला—मल्लयुद्ध में भी निपुण हो जाये। कुश्ती सिखाने के लिये एक पहलवान भी रखा गया।

महात्माजी अंग्रेज़ी और इतिहास तो पढ़ाते ही थे, साथ

ही धर्म-शिक्षा भी स्वयं ही पढ़ाते। यह काम उन्होंने अंतिम दिनों तक अपने हाथ में रखा। इसी अभिप्राय से उन्होंने धर्म-शिक्षा की खास पाठ्य-पुस्तकें तैयार करवाई। वह दयानन्द कालिज को आर्य-समाज के प्रचार का एक साधन समझते थे। आरंभिक काल में महता रामचन्द्र जी शास्त्री, पंडित जगतसिंह जी, पंडित संतराम आदि जो आर्योपदेशक रखे गये, वह कालिज कमिटी की ही ओर से थे। इन के भ्रमण का कार्य-क्रम लाला साईंदास जी के जिम्मे था।

प्रकाश ही प्रकाश

महात्मा हंसराज जी के नेतृत्त्व में दयानन्द कालिज फलने फूलने लगा। प्रतिदिन बढ़ती उसकी उन्नति देखकर उनकी इच्छा हुई कि कालिज की अपनी बिल्डिंग बन जाय। सर्वप्रथम वह बिल्डिंग बनी, जहाँ आज-कल दयानन्द एंग्लो वैदिक मिडल स्कूल है। शीघ्र ही यह विशाल बिल्डिंग तग मालूम होने लगी। तब नई जमीन मोल ली गई और २२ अप्रैल १६०५ को ईदर रियासत के हिज़हाइनैस मैजर जनरल महाराजा सर प्रतापसिंह जी के कर-कमलों से दयानन्द कालिज की आधारशिला रखी गई। यह ज़मीन नव्वे हज़ार में लाला रामसरनदास जी से ख़रीदी गई। उन्होंने इसमें से दस हज़ार रुपया दान रूप में छोड़ दिया। ज़मीन ख़रीदते समय बिल्डिंग बनाने के लिये कालिज-कमिटी के पास कोई रुपया न था। परन्तु, महात्मा हंसराज जी ने विश्वास दिलाया कि वह पचास हज़ार रुपया जुटा देंगे।

उन दिनों पचास हजार रुपये जुटाना कोई सहल काम न था। धनवान आर्य-समाज से कोसों दूर भागते थे और आर्य

समाजियों में कोई धनवान न था। परन्तु, महात्मा जी ने 'आर्य गज़ट''[1] में अपील प्रकाशित की। गर्मियों की छुट्टियों में एक ओर कालिज के विद्यार्थी झोलियां फैला कर निकल पड़े, और दूसरी ओर स्वयं महात्माजी भिक्षा मांगते नगर नगर घूमने लगे। १६०७ के अन्त तक छ: हज़ार रुपया जमा हो गया। भिक्षा का काम आगामी वर्ष भी जारी रहा और १६०६ में बत्तीस हज़ार रुपया हो गया। १६०६ में जब कालिज के विद्यार्थी गर्मी की छुट्टियों पर जाने लगे तो महात्मा जी ने पूरा पचास हज़ार रुपया कालिज कोष में जमा करा दिया। इस धन-संग्रह का महत्त्व इस बात में है कि पचास हज़ार की बड़ी राशि में एक भी रकम पांच सौ से अधिक नहीं थी। इसीसे अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि यह राशि इकट्ठी करने में महात्माजी को कितना कड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा। यह केवल उन के बलिदान, त्याग और तपस्या का फल था।

और फिर हमें नहीं भूलना है कि यह १६०७ के वह दिन थे, जब ब्रिटिश सरकार की आँखों में आर्य-समाज एक कांटे की तरह अखरती थी। लाला लाजपतराय जी को देश निर्वासित किया जा चुका था। जहाँ-तहाँ आर्य-समाज के कार्य-कर्त्ताओं पर कड़ी निगाह रखी जाती और उन की हरकतों की पूरी देखभाल होती।

धन-संग्रह के बाद भवन-निर्माण का कार्य शुरू हुआ। महात्मा जी साधारण बातों का भी स्वयं ध्यान रखते। सब से पहले सायंस-ब्लाक बना और यह पञ्जाब में अपनी तरह का पहला ब्लाक था। तब दूसरे ब्लाक बने, जिन के लिये दानी-

१. आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक-पत्र

महानुभावों ने दिल खोल कर सहायता दी।

परवानों का जुटाव

बिल्डिंग तो बन गई; परन्तु, जब तक सच्ची लग्न वाले महानुभाव न हों, तब तक कोई कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। महात्मा जी के आत्म-त्याग ने अनेकों नवयुवकों के हृदय में त्याग की भावना पैदा कर दी। लाला लाजपतराय जी त्याग भाव ही से कालिज का काम करते रहे; किंतु, आवश्यकता ऐसे परवानों की थी, जो कालिज समाज की सेवा को ही अपने जीवन का ध्येय बना लें। आत्म-त्यागियों का एक ऐसा जत्था बनाने के लिये महात्मा जी ने आजीवन-सदस्यता (लाइफ मैंबर-शिप) की प्रणाली चलाई। महात्माजी के आदर्श ने पंजाबी नव-युवकों को परोपकार की ओर झुका दिया। फलत, ७ जनवरी १६०२ को लाला साईंदास जी (महात्मा जी के बाद कालिज के प्रिंसिपल) आजीवन सदस्य बने। १६ मार्च १६०२ को लाला दीवान चंद जी (दयानंद कालिज, कानपुर के प्रिंसिपल, आगरा यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर) आजीवन सदस्य बने, और उन्हें दयानंद हाई स्कूल का मुख्याध्यापक नियुक्त किया गया। और इन के बाद दिसम्बर १६०२ में लाला परमानंद (श्री भाई परमानन्द) आजीवन-सदस्य बने; इन्हें इतिहास का असिस्टैंट प्रोफेसर नियुक्त किया गया। लाहौर से बाहर भी यह प्रणाली प्रचलित हुई। १६०२ में ही पंडित मेहरचंद जी (बाद में दयानंद कालिज जालंधर के प्रिंसिपल, अब स्वर्गीय) को साईंदास हाई स्कूल जालंधर का अवैतनिक मुख्याध्यापक नियुक्त किया गया। यह स्कूल उस समय जीवन और मृत्यु के संघर्ष में था। लाला देवी चंद जी को प्रांतीय सिवल सर्विस में एक पद

पेश किया गया, जिसे ठुकराकर वह पहले दयानंद हाई स्कूल, रावलपिंडी और बाद में दयानंद हाई स्कूल, होशियारपुर के मुख्याध्यापक नियत हुये।

आजीवन सदस्यता का क्रम १६०२ में ही समाप्त नही हो गया। १६०४ में लाला रामचंद जी दयानद हाई स्कूल के मुख्याध्यापक नियुक्त हुये; परंतु,अगले ही वर्ष उन का देहांत हो गया। मृत्यु से कुछ ही दिन पहले उन्होंने लाला दीवान चद जी को एक पत्र मे लिखा, "मैं इस जीवन से भली भांति परिचित हो गया हूं। भगवान करे, अगले जन्म में भी दयानद स्कूल की सेवा का अवसर प्राप्त हो।" निस्संदेह, उनकी मृत्यु से दयानंद हाई स्कूल को भारी हानि हुई। उनके बाद बत्ती रामरत्न जी (बाद में दयानंद कालिज लाहौर के प्रिंसिपल, अब स्वर्गीय) दयानंद हाई स्कूल के मुख्याध्यापक बने।

इन नवयुवकों का चुनाव महात्माजी ने बहुत देख-परख के बाद किया था और यह प्रणाली बहुत लाभप्रद रही। इसलिये इसके नियम, उपनियम आदि सब बना दिये गये। महात्मा जी के रिटायर हो जाने के बाद भी बहुत से आजीवन-सदस्य बने, जिनके नाम यह हैं:—डाक्टर गोवर्द्धनलाल जी दत्त (पहले दयानन्द कालिज शोलापुर और बाद में दयानन्द कालिज लाहौर के प्रिंसिपल) केप्टन अमरनाथ जी बाली, प्रोफेसर बहादुर मल, (अब प्रिंसिपल दयानन्द कालिज मुलतान) पंडित दीवानचन्द जी शर्मा, पं० विश्वबन्धु, प्रोफेसर श्रीराम, (प्रिंसिपल दयानन्द कालिज श्रीनगर) पंडित सुरेन्द्रमोहन (भूतपूर्व प्रिंसिपल दयानंद आयुर्वैदिक कालिज, लाहौर), डाक्टर आसानंद, लाला सूर्यभानु (पहले दयानंद हाई स्कूल के मुख्याध्यापक, बाद में दयानन्द

कालिज शोलापुर के प्रिंसिपल), प्रोफेसर भगवानदास ।

लाहौर से बाहर के आजीवन सदस्यों के नाम यह हैं: लाला ज्ञानचंद महाजन, जालंधर, लाला अमोलकराम, जालंधर; लाला चमनलाल, जालंधर; लाला रामदास, प्रिंसिपल दयानंद कालिज, होशियारपुर; पंडित वज़ीरचंद, ऊना; लाला लालचंद, मुलतान; (इनका देहांत हो गया) लाला रामलाल, लायलपुर; पंडित रलाराम एम० ए०, प्रिंसिपल दयानंद कालिज, होशियारपुर।

शमा जल पड़ी। परवाने जुट गये ।

३.

बरजे भूषण चाँद

समाज-सुधार, शिक्षा-प्रसार और वेद-प्रचार के लिये राजसी ठाटबाट जुटाने वाला हंसराज स्वयं सादा-जीवन का एक आदर्श था। रहन सहन सर्वथा साधारण; कोई साज नहीं, सजावट नहीं। स्वभाव बहुत ही नम्र और मृदु; कोई अहंकार नहीं, अकड़ नहीं। बहुत हलीमी से बात करते और झट ही दूसरे के मन में अपने लिये आदर का स्थान बना लेते।

१८६५ में जब वह दयानंद हाई स्कूल के मुख्याध्यापक थे,

तब लाहौर शहर के अंदर[1] एक मामूली से मकान में रहते। उन के एक विद्यार्थी ने उस मकान का चित्र इस तरह खैंचा है : "मुहल्ला सत्थां में आप एक छोटे-से दुमंजिले मकान में रहते। ड्योढ़ी के भीतर दस फुट चौड़ा और १६ फुट लंबा एक कमरा था। उसी में सूत की सादी दरी बिछी रहती, जिसके एक कोने पर महात्मा जी बैठते। कमरे का कुल फर्नीचर दो डैस्क और एक छोटी-सी तिपाई थी। महात्मा जी को यदि कुछ लिखना होता तो, डैस्क आगे सरका लेते। आगंतुकों को भी भूमि पर ही बैठना होता था, क्योंकि कुर्सी कोई न थी। इस कमरे के बगल मे आराम करने का कमरा था। इसमें एक चारपाई होती और उस पर एक कबल। ऊपर की छत पर उनकी माता तथा धर्मपत्नी रहतीं। मकान का किराया चार रुपये था।"

महात्मा जी की सादगी देखकर लोग आश्चर्य-चकित रह जाते। जब वह प्रिंसिपल बन गये, तब भी यही रहते। बाद में जब कालिज कमिटी की अवस्था सुधरी, तब कालिज होस्टल के पड़ौस मे एक साधारण-से मकान में रहने लगे। उनके सादा जीवन ने सैकड़ों लोगों के जीवन पलट दिये।

वह सदा खादी ही धारण करते। खादी का कुरता और खादी का पाजामा। अधिक कपड़े न वह पहनते, न रखते। सर्दियों में काश्मीरी पट्टू का गर्म कोट पहन लेते और सर्दियों में गबरून का। पॉव में प्राय: वह होशियारपुर का बना हुआ देशी जूता ही पहनते। हां, एक बूट भी उनके पास था। पर वह भी अपने ही देश का बना हुआ। जब कभी लंबी यात्रा पर जाना होता तो, यही बूट पहनते। विदेशी वस्तुओं का तो वह

---

१ लाहौर के तेरह द्वारों के भीतर जो शहर बसा है।

कभी उपयोग ही न करते। १६०६ की उनकी डायरी में लिखा है कि वह जुराबें नहीं पहनते थे। इससे उनके पॉव में छाले भी पड़ गये। छालों के कारण जब जूता पहनना ,कठिन हो गया, तो नंगे पॉव ही सैर को जाने लगे।

विश्ववंद्य महात्मा गांधी ने एक फकीर का वेष पहन कर बकिंघम महल में जाकर एक आदर्श स्थापित किया था। परन्तु, इससे बरसों पहले महात्मा हंसराज जी साधारण पंजाबी वेष में बड़े बड़े राजा-महाराजाओं के महलों और गवर्नमैंट हाऊस में निस्संकोच आया जाया करते। उनके सादा वेष में बहुत आकर्षण था। जो कोई भी उनसे मिलता, प्रभावित हुये बिना न रहता। जापान के राजकुमार,ब्रिटेन के प्रधान मंत्री रैम्जे मैक्डानल्ड जर्मनी के डाक्टर फान ग्लैसिप और भारत के बड़े-बड़े आदमी से लेकर एक साधारणतम व्यक्ति भी बेरोक-टोक उनके पास आ-जा सकता था। बड़ा हो या छोटा, अपना हो या पराया महात्मा जी प्रेम और आदर से मिलते।

सोहे गूदड़ी

एक साहूकार ने महात्मा जी की ख्याति सुनी तो सोचने लगा कि निश्चय ही वह ठाट-बाट से रहते होंगे। इतने बड़े कालिज के प्रिंसिपल के मकान में खूब साज-सजावट और रोब-दाब होगा। जिसने लाखों रुपया कालिज के लिये जुटा दिया, वह स्वयं भी लाखों में खेलता होगा। ऐसी कल्पना कर जब वह महात्माजी के मकान के भीतर पहुंचा तो उस के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जिस महापुरुष की सज-धज के संबंध में वह इतनी ऊंची उड़ानें भर रहा था, वह फटा कम्बल ओढ़े एक साधारण तख्त पोश पर बैठे लिख रहा था। कंबल कई जगह से फटा

हुआ था। महात्माजी ने आदरपूर्वक उसे बैठने का संकेत किया। सादगी से प्रभावित साहूकार उनके बराबर बैठने की जुर्रत न कर सका और तले भूमि पर ही बैठना चाहा। परन्तु, महात्माजी ने उसे अपने पास बिठा लिया।

दूसरे दिन, वही साहूकार पश्मीने के दो शाल लेकर महात्माजी की सेवा में उपस्थित हुआ। नम्रता पूर्वक कहने लगा, "यह फटा कम्बल उतार दीजिये। यह आपको नहीं सोहता। शाल ओढ़ लीजिये।"

महात्माजी ने साहूकार की श्रद्धा की प्रशंसा की। कहने लगे, "मेरे लिये यह कंबल ही ठीक है। शाल लौटा ले जाइये।"

परंतु, साहूकार नहीं माना। तब महात्माजी ने कहा, "यह शाल मैं किसी भी तरह स्वयं ओढ़ नहीं सकता। यदि आप की इतनी ही श्रद्धा है तो, मैं यह दोनों शाल लेकर कालिज कोष में दे देता हूं।" और ऐसा ही हुआ।

हारा उपदेश : जीता भेष

रावलपिंडी के एक मूर्त्तिपूजक महोदय हठधर्मी में अपना उदाहरण न रखते थे। न केवल आर्यसमाजियों को गालियां देते, अपितु यदि किसी आर्यसमाजी से छू भी जाते तो कपड़ो समेत स्नान करते। स्कूल की शिक्षा समाप्त कर उनका लड़का दयानन्द कालिज लाहौर में प्रविष्ट होने आया। बाप बेटे के साथ था। महात्मा जी के संबंध में सुनकर उसके मन में तो आया कि उनके दर्शन कर लूं, परंतु, संकीर्ण-भाव बार बार मन बदल देते। बहुत देर तक वह इसी उलझन में रहा। आखिर, वह महात्माजी के घर चला। राह में उसके भी मन में वही विचार उठे, जो साहूकार के मन में चक्कर काटते रहे। उसने तो यहाँ तक सोचा कि क्या

मुझे कोठी के अंदर जाने की अनुमति मिल जायगी ?

परंतु, जैसे ही वह मकान में दाखिल हुआ, उसकी मानसिक अवस्था ही बदल गई। अपने मनोभावों के सर्वथा प्रतिकूल वातावरण पाकर वह बहुत प्रभावित हुआ। महात्माजी संध्या आदि से निवृत्त होकर तख्त पर बैठे स्वाध्याय कर रहे थे। महात्मा जी ने उसे बैठने को कहा। वह तो बैठ गया, लेकिन इस आश्चर्य को हृदय में दाबे कि क्या यही दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज के प्रिंसिपल का वास-स्थान है ? सज न धज। तड़क न भड़क। सादगी ही सादगी। जैसे कोई तपस्वी का स्थान हो। वह बोल नहीं सका। कुछ देर चुपचाप बैठकर वह चुपके-से चला आया।

घर पहुंच कर उसने समस्त मूर्त्तियों को अंतिम प्रणाम किया और पत्थर के स्थान पर उस एक प्रभु की पूजा करने लगा। घंटी बजाने की बजाय हवन करने लगा। हजारों उपदेशों से जिसका मन न बदला था, महात्मा जी के आदर्श सादा-जीवन ने उसे कट्टर पौराणिक से सच्चा वैदिक-धर्मी बना दिया।

ऐसी घटनाओं से महात्मा जी का जीवन भरा पड़ा है।

भंवर

अब तक महात्मा जी केवल चालीस रुपये मासिक में ही गुज़ारा करते थे। इसमें संदेह नहीं कि तब रुपये का मोल बहुत था। और टीपटाप का इतना खर्च न होता। तो भी महात्मा जी की स्थिति के आदमी के लिये परिवार सहित चालीस रुपये में निर्वाह करना बहुत कठिन था। कोई ठाठबाट तो वह रखते ही न थे। जब कभी खर्च न पटता तो भोजन में ही कटौती होती।

अत्यधिक काम और कम भोजन, फलस्वरूप, महात्मा जी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। मन तो विचारों से बलवान रह सकता

है, पर शरीर तो आहार मांगता है। अल्पाहार से उनका शरीर दिन प्रतिदिन निर्बल होने लगा और निर्बलता यहाँ तक बढ़ी कि क्षयरोग (तपेदिक) के लक्षण दीखने लगे। बिगड़ते स्वास्थ्य ने उनके मन पर भी असर डाला। वह जीवन से निराश-से हो गये। एक बार उन्होंने लाला साईंदास से कहा, "अब तो मौत की ही प्रतीक्षा करनी चाहिये।"

एलोपैथी-उपचार से उन्हें कोई लाभ न हुआ। परन्तु, जब उन्होंने पंडित नारायणदास जी वैद्य का इलाज शुरू किया तो, थोड़े ही दिनों मे उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा। आयुर्वैदिक उपचार ने बहुत लाभ किया। तभी से उनके दिल में आयुर्वैदिक चिकित्सा पर श्रद्धा अटूट हो गई। स्वास्थ्य-लाभ कर महात्मा जी अपने पथ पर फिर बढ़ने लगे।

४.

जोगी चलते भले

जीवन-आहुति दिये पच्चीस बरस गुज़र गये।

१८८६ ईस्वी में एक नन्हा-सा स्कूल जारी हुआ था, कि जब महात्मा हंसराज ने अपना जीवन अर्पण किया। चौथाई शताब्दि के सूर्य ढल जाने के बाद १६११ में वह स्कूल एक अद्वितीय और गौरवमय कालिज बन गया। दयानंद एंग्लोवैदिक कालिज सर्व-गुण-सम्पन्न एक पूर्ण कालिज बन चुका था। एम० ए० तक की शिक्षा का सुप्रबंध, इञ्जीनियरिंग क्लास, आयु-

वैदिक विभाग, उपदेशक विद्यालय, संस्कृत-शिक्षा का प्रबंध, दस्तकारी स्कूल—कालिज किसी भी ठौर दूसरे दर्जे पर न था। शिक्षा का कोई भी अंग अनुपेक्षित न रहा। इतने अल्पकाल में इतनी उन्नति ने अपनों बेगानों सब को आश्चर्य चकित कर दिया।

कालिज की आर्थिक स्थिति भी बहुत मजबूत हो गई। स्कूल स्थापना के समय केवल चौबीस हज़ार रुपया ही तो था। परंतु, १६११ मे आठ लाख इकत्तीस हज़ार रुपया कालिज कोष मे जमा था। कालिज की अपनी आय तब छयासठ हज़ार रुपया प्रतिवर्ष थी। इन्हीं दिनों कालिज की रजत-जयंती मनाई गई। रायबहादुर लाला लाल चंद जी जज हाई कोर्ट ने कहा, "१८८६ में जो पौदा लगाया गया था, वह आज एक विशाल वृक्ष बन चुका है, और इस का श्रेय महात्मा हंसराज जी को प्राप्त है।"

लाला लाजपतराय जी ने अपनी पुस्तक 'आर्य समाज' में लिखा, "यह सब प्रयत्न और बलिदान व्यर्थ होते, यदि ठीक वक्त पर एक नौजवान अपना जीवन दान न दे देता, यह नौजवान हंसराज है। जिन्होंने यूनिवर्सिटी की उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपना जीवन कालिज को सौंप दिया। इस सेवा-कार्य में उन्हें कटु विरोध, तीव्र आलोचना, और घनी निराशा का भी सामना करना पड़ा। कई बार लोगों ने उन्हें गलत समझा। कई बार उनके मित्र भी उन के विरोधी हो गये। परंतु, वह चट्टान की तरह दृढ़ थे। उन की सादगी बेजोड़, उन की साधुता निष्काम, और बलिदान आदर्श है। उन का निजि और सार्वजनिक जीवन, दोनों प्रशंसनीय हैं।"

स्वर्ण जयंति समाप्त हो गई। जनसमूह उत्साह-भरे मन से घरों को लौटने लगा—और इधर महात्मा हंसराज एक और महान त्याग की तैयारियां करने लगे। मानव संसार में सब कुछ त्याग सकता है; धन-दौलत, घर-बार, मित्र-संबंधी, सब कुछ। परन्तु, यश, पद और स्वामित्त्व त्यागना लगभग असंभव है। महात्मा जी ने पच्चीस बरस की निरंतर सेवा करते हुये जो यश प्राप्त किया था, जो पद प्राप्त किया था, उसे भी ठुकराने के लिये तैयार हो गये। उन्होंने मन के साथ निश्चय किया और अपने भाई से परामर्श; और २७ नवंबर १९११ को, जब आर्य समाज, लाहौर का वार्षिकोत्सव समाप्त हुआ तो निम्न-लिखित पत्र कालिज-कमिटी के प्रधान लाला लालचंद जी के हाथ में थमा दिया·

"डी० ए० वी० कालिज
लाहौर।
२७ नवबर, १९११

"प्रिय राय बहादुर जी,

१८८५ में ग्रेजूएट होने के बाद मैंने आप को एक पत्र लिखा था, जिस में बिना पारिश्रमिक लिये अपनी सेवायें मैंने कालिज के अर्पण की थी। उस समय मैंने और मेरे भाई साहब ने अनुभव किया कि महर्षि स्वामी दयानंद का स्मारक स्थापित करने के लिये बहुत बड़े बलिदान की आवश्यकता है। इस अवस्था में मैंने अपना जीवन कालिज की सेवा में अर्पण करने का निश्चय किया। आपनें और आपकी कमिटी ने मुझे इस पुनीत-संस्था का मुख्याध्यापक और फिर प्रिंसिपल नियुक्त किया।

"१ जून १८८६ को कालिज का उद्घाटन हुआ। आरंभ में यह एक छोटी-सी संस्था थी। परन्तु, भगवान की दया से

उसने आश्चर्य-जनक उन्नति की। अब इसकी स्थिति देश की शिक्षा संस्थाओं में बहुत ऊंची है। विद्यार्थियों की संख्या की दृष्टि से यह पंजाब की सब से बड़ी सस्था है। स्कूल विभाग में १५६५ और कालिज विभाग में ६७२ विद्यार्थी हैं। केवल संख्या से ही नहीं, अपितु दूसरी दृष्टियों से भी इस कालिज का पंजाब में विशेष स्थान है। कालिज की शिक्षा ने आर्य समाज को बहुत लाभ पहुंचाया। पंजाब के सार्वजनिक जीवन पर भी इस कालिज की गहरी छाप है।

"१ जून १९११ को ही मैंने इस स्थान को त्यागने का निश्चय कर लिया था। भाई साहब ने इसकी स्वीकृति भी दे दी थी। परन्तु, मेरे कुछ मित्र उस समय मुझ से सहमत न हो सके। इसी से पहले मैंने यह बात आपके सामने रखी भी न थी। जब मेरे मित्रों ने स्वीकृति दे दी, तो उन्हीं दिनो कालिज का दाख़िला शुरू हो गया। ऐसी अवस्था मे डर था कि कही मेरे रिटायर होने से दाख़िले में बाधा न हो। इसलिए दाख़िले के निबटने तक मैंने अपने विचार को स्थगित रखा। अब कालिज का दाखिला हो चुका। इसलिये, इस त्याग-पत्र द्वारा प्रार्थना है कि ३१ जनवरी १९१२ तक मुझे मेरे पद से निवृत्त किया जाय। मुझे इस बात की बहुत प्रसन्नता है कि मैं उसी प्रधान के आधीन रिटायर हो रहा हूं, जिस के आधीन मैंने कार्य आरम्भ किया था। यह मेरा परम सौभाग्य है।

"मान्यवर, आपके निस्वार्थ देश-प्रेम, प्रबन्ध की पवित्रता और शिष्टाचार ने मुझे अपना प्रशंसक बना लिया है। मैं आपका और आपकी कमिटी का धन्यवाद करता हूं कि आप मेरे साथ बड़ी भद्रता और कृपा से बरतते रहे। आप द्वारा ही मैं अपने

भूतपूर्व प्रधान भगत ईश्वरदास और लाला 'द्वारिका दास का भी धन्यवाद करता हूं ।

''कालिज की भलाई और उन्नति के लिये प्रार्थना करता हुआ..

आपका सेवक
हंसराज ।''

इस पत्र के लिये कोई भी तैयार न था, परन्तु, महात्मा जी तो इसके लिये दो बरस से तैयारी कर रहे थे। उन्होने अपने उत्तराधिकारी लाला साईदास जी को इसी अभिप्राय से कैम्ब्रिज भेज भी दिया था और वह १६११ में डिग्री प्राप्त कर भारत लौट आये थे।

२२ दिसम्बर १६११ को कालिज सब-कमिटी के सामने त्यागपत्र पेश हुआ। कोई भी इसे स्वीकार करना न चाहता था। परन्तु, सब जानते थे कि हंसराज का निश्चय अटल होता है। इसलिये इच्छा न होने पर भी त्याग-पत्र कालिज कमिटी के पास भेज दिया गया। २ फरवरी १६१२ की बैठक मे यह त्याग-पत्र स्वीकार हुआ और लाला साईदास जी प्रिंसिपल नियुक्त हुए।

१६११ में महात्माजी की आयु केवल ४८ बरस थी। यह वह आयु है, जब लोग प्रिंसिपल बनते हैं। परन्तु,महात्मा हंसराज जी ने स्वयं इस उच्चपद को त्याग दिया। जब महात्माजी ने कालिज त्यागा, तब वह कितने गंभीर, कितने शांत और कितने निरभिमानी थे, यह उनके इन शब्दों से झलकता है, जो उन्होंने विद्यार्थियों द्वारा दियें गये मानपत्र के उत्तर में कहे, ''मैं सार्वजनिक रूप से उन लोगों का धन्यवाद करना चाहता था, जिन्होंने मुझे प्रण-पूर्ण करने में सहायता दी। फिर मुझे विचार आया,

शायद वे सार्वजनीन-धन्यवाद को अच्छा न समझें। २८ मार्च को जब मैंने प्रिंसिपल-पद का त्याग किया तो मेरी इच्छा उन लोगों के चरण छूने की हुई, जिन्होंने प्रण-पूर्ति में मुझे सहारा दिया। सबसे पहले मैंने अपने भाई और भाभी के चरणों को छुआ। फिर मुझे ध्यान आया, मुझे अपने बड़ों के भी चरण छूने चाहिये, जिनकी कृपा के बिना मैं अपनी प्रण-पूर्ति में कदापि सफल न हो सकता था। मैं स्वर्गीय लाला लालचन्द जी और स्वर्गीय लाला साईंदास जी के लिये आदर का भाव रखता हूं। वे अब नहीं हैं, इसलिये, उनके चरण छू न सका। मैंने श्रद्धा से उन्हें स्मरण किया। तब मैंने अपने अन्य बुजुर्गों और साथियों के चरणों में पुष्पांजलि देनी चाही। और मैंने राय बहादुर लाला मूलराज, भगत ईश्वरदास, लाला द्वारिकादास और लाला लाजपतराय के चरणों को छुआ।"

जस्टिस बख़्शी टेकचन्द जी उन दिनों कालिज-कमिटी के प्रधान मंत्री थे। महात्माजी के रिटायर होने पर उन्होंने इस वर्ष की रिपोर्ट में लिखा, "यह सन् १८८६ की बात है कि बाईस बरस के नौजवान हंसराज ने अपनी अवैतनिक सेवायें कालिज को अर्पित कीं। . . उन्होंने कालिज की जो अमूल्य सेवा की, वह पंजाब के सामाजिक और धार्मिक इतिहास में देर तक याद रहेगी। हिन्दु साधारणतः और आर्यसमाजी विशेषत. उनके आभारी रहेंगे। उनका नाम कालिज के साथ इतना संयुक्त था कि जब अखबारों में उनके त्यागपत्र का समाचार छपा तो समस्त सामाजिक जगत में सन्नाटा छा गया। हंसराज जी की अनुपस्थिति में कालिज का क्या बनेगा, यह किसी को समझ न आता था, इसलिये उन्हें त्यागपत्र लौटाने को कहा गया। परन्तु, उनके

दृढ़ निश्चय के सामने कमिटी को झुकना पड़ा, और २८ मार्च १९१२ को उन्होंने अपना कार्य सौंप दिया। सौभाग्य से हंसराज जी हमारे बीच मौजूद हैं। उनके कुल काम का विवरण देना असम्भव है। इतना कह देना ही पर्याप्त है कि उन्होंने २५ बरस तक पूरी सफलता के साथ कालिज का संचालन किया। उनके मित्र और बन्धु जानते है कि वह एक सच्चे और ईमानदार प्रिंसिपल थे। वह वचन के पूरे और कर्त्तव्य-परायण रहे। निस्सन्देह, वह सही अर्थों में आचार्य थे।"

महात्मा हंसराज जी भारत के पहले भारतीय मुख्याध्यापक और पहले भारतीय प्रिंसिपल थे। जब तक उन्होंने अपने तप, त्याग, सादगी और योग्यता से यह सिद्ध नही कर दिया कि भारतीय भी प्रबंध करने की योग्यता रखते हैं और महत्त्व-पूर्ण दायित्त्व निभा सकते है, तब तक भारत-भर मे किसी को साहस नहीं हुआ कि वह अपने बच्चों की शिक्षा अपने हाथ में ले सके। यह तो महात्मा हंसराज जी के त्याग के बाद भारतीयों में साहस, उत्साह, बल और आत्मविश्वास पैदा हुआ। तब स्थान-स्थान पर स्कूल और कालिज खुलने लगे, गुरुकुल, ऋषिकुल और विद्यालय स्थापित होने लगे। इस समय सनातन-धर्मियों, ब्रह्म समाजियों, देव समाजियों, मुसलमानों, सिखों, जैनियों आदि भारतीयों की ओर से संचालित जो शिक्षा संस्थायें आप देख रहे हैं, ये कहीं भी दिखाई न देतीं, यदि महात्माजी ने अपने बलिदान से आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान की भावना पैदा न की होती।

इस संबंध में एक घटना उल्लेखनीय है।

लाहौर में सनातनधर्मानुयायिओं की ओर से सनातन

धर्म कालिज स्थापित करने का निश्चय किया गया । इसी प्रयोजन से एक सभा बुलाई गई, जिस में जम्मू और काश्मीर के स्वर्गीय महाराजा सर प्रतापसिंह जी भी सम्मिलित हुये । महात्मा हंसराज जी को भी बुलाया गया था। महाराजा सर प्रतापसिंह भाषण करते करते अनायास रुक गये और महात्मा जी को संबोधन कर कहने लगे, "हंसराज जी ! एक हंसराज इन को भी दे दो, ताकि यह कालिज भी सफल हो सके ।"

५.

तिनके का बल

"नदी के तेज़ बहाव में सैकड़ों तिनके बहने लगे। उनमें से एक तनिक-सा सहारा पा खड़ा हो गया। एक के साथ एक और अड़ गया। एक से अनेक हुये। उड़ती हवा ने किनारे की मिट्टी उन पर जमा दी। लोगों के देखते देखते पहले वह एक टीला बना और तब टीले से एक टापू, जिसपर सैंकड़ों लोग बसेरा ले सके।"

महात्मा हंसराज जी ने यह उदाहरण अपने एक भाषण में

दिया था। लेकिन, उन्होंने यह बात केवल कही नहीं,इसका तत्व आंका और एक आत्मविश्वासी के रूप में संसार-प्रवाह में खड़े हो गये। एक तिनके से टापू बना, अकेले हंसराज ने एक जीती जागती सस्था खड़ी की। लेकिन, इतने से ही उन्हें संतोष नही हुआ।

दयानंद कालिज को उन्होंने अपना जीवन इस उद्देश्य से समर्पित किया था कि महर्षि दयानन्द का मिशन पूरा हो। इसलिये दयानंद कालिज को सफल बनाने के अलावा उन्होंने जरूरी समझा कि आर्य समाज की सर्वतोमुखी उन्नति हो। तदर्थ आर्य समाज को एक नियंत्रित और संगठित रूप देने के लिये जब पंजाब मे आर्य प्रतिनिधि सभा स्थापित हुई तो महात्मा जी ने इसमें पूरा भाग लिया। इसके प्रधानपद का उत्तरदायित्व भी उन्होंने सम्भाला। बाद में जब फूट के कारण दो अलग-अलग दल बन गये और कालिज तथा आर्य-समाज का कुल बोझ आप पर आ पड़ा, तब भी आपने यह बोझ बड़ी खुशी से उठाया।

१८९३ की बात है, आर्य समाज अनारकली एक नन्हा-सा बच्चा था। न कोई मंदिर, न दफ़्तर। ३० नवम्बर १८९३ की अतरंग सभा ने निश्चय किया कि पैसा अखबार स्ट्रीट[1] में पैसा अखबार' के सामने भारत सुधार प्रैस का एक कमरा आर्यसमाज के कार्यालय के लिये लिया जाय। इसका किराया दो रुपये मासिक था। उन दिनो आर्य समाज के प्रधान लाला लाजपतराय और मंत्री सरदार तेजासिह थे। मार्च १८९४ में महात्मा जी समाज के प्रधान चुने गये। उन्हीं दिनो महता कृपाराम को बारह रुपये मासिक पर आर्य समाज का उपदेशक नियत किया गय

१ लाहौर के प्रख्यात बाजार अनारकली के बगल में एक बाजार।

और समाज के लिये एक दरी और चार कुर्सियां खरीदी गईं।

और १६४५ की बात है, दो रुपये मासिक किराया देने वाला आर्य समाज आज स्वयं हजारों रुपया मासिक किराया प्राप्त करता है। जिसके पास अपना कोई मंदिर न था, वही समाज आज एक भव्य मंदिर का स्वामी है। तब इसकी कुल सम्पत्ति एक दरी और चार कुर्सियां थी, आज इसकी सम्पत्ति कम से कम दस लाख की है। इने-गिने सदस्यों वाला समाज आज सैकड़ों सदस्यों को अपने सिद्धांत-पाश में बांधे है।

निश्चय ही यह उस तिनके का बल है, जो बहते प्रवाह में खड़ा हो गया।

आरम्भ में, आर्य समाज लाहौर ही पंजाब, सीमा प्रांत और बलोचिस्तान में प्रचार का प्रबन्ध करता था। यह सारा बोझ महात्मा हंसराज जी के ही कन्धों पर था। बाहर की समाजों की ओर से जब उपदेशकों की मांग आती तो, महात्माजी औरों को भेजने के अतिरिक्त स्वयं भी जाते। कुछ देर तब इसी तरह काम चलता रहा। महात्मा जी प्रचार कार्य को विस्तृत रूप से चलाना चाहते थे, इसलिये उन्होंने, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिंध, बलोचिस्तान की स्थापना की। प्रचार का प्रबन्ध तो यही करती। लेकिन, उपदेशकों का वेतन कालिज-कमिटी देती थी। महात्मा जी कालिज के प्रिंसिपल भी थे, और सभा के प्रधान भी। इसलिये उपदेशकों के दौरा आदि का कार्यक्रम उन्हें ही बनाना पड़ता। दयानंद कालिज के आजीवन-सदस्य और अन्य प्रोफेसर लाला साईंदास एम० ए०, लाला दीवान चन्द एम० ए०, भाई परमानंद एम० ए०, बख्शी रामरत्न बी० ए०, ला० रामप्रशाद बी० ए०, पंडित

राजाराम, श्रीकाली प्रसन्न चटर्जी आदि वेद प्रचार में बहुत दिलचस्पी लिया करते।

इस प्रबंध-कार्य के अलावा महात्माजी ने अपने तर्क पूर्ण और विवेचनाशील भाषणों से आर्य सिद्धातों की बहुत पुष्टि की। लगभग प्रति सप्ताह वह किसी न किसी समाज के उत्सव पर पधारते। आर्य समाज अनारकली में तो उनके व्याख्यान प्रायः हुआ करते। उनके भाषणों की एक विशेषता थी कि उन्होंने कभी किसी का दिल दुखाने वाली बात नहीं कही। इन भाषणों में वह अपने अनुभव की बाते सुनाया करते थे।

शाम के समय महात्मा जी आर्य महानुभावों से विचार विनिमय किया करते। इन महानुभावों में स्वर्गीय लाला साईंदास, स्वर्गीय राय बहादुर लाला लालचन्द जी मनचन्दा आदि शामिल थे। प्रोफेसर देवी दयाल और पंडित राजाराम जी की सहायता से महात्मा हंसराज ने 'शंका-समाधान' का सिलसिला भी जारी किया। हर रविवार अथवा शनिवार की शाम को आर्य समाज में एक सार्वजनिक सभा होती, जिसमें यह तीनों महानुभाव जनता की शंकायों का उत्तर देते।

महात्मा जी ने एक और उपयोगी एवं मनोरंजक सिलसिला भी जारी किया। आर्य-समाज के सत्संग के बाद या किसी छुट्टी के दिन कालिज के कुछ प्रोफेसर, समाज के कुछ सदस्य और कालिज के कुछ चुने हुए विद्यार्थी रावी नदी के तट पर जाते। वहीं-भोजन बनाते, खाते-पीते, नहाते और वार्तालाप करते। महात्माजी कहा करते थे कि देश की कई महत्त्व पूर्ण समस्याओं का हल और समाज के अनेक आवश्यक कार्यों का

निश्चय रावी के किनारे हो जाया करता। नौका-दौड़ भी इसी 'पिकनिक' की उपज थी। दयानन्द कालिज को युवको मे तैरने और नौका खेने का चाव पैदा करने का श्रेय प्राप्त है। इस कार्य में डा० सर गोकुलचन्द नारंग ने विशेष प्रयत्न किया। रावी के किनारे पर ही स्वदेशी कपड़े और स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार की योजना बनाई गई। लाहौर मे स्वदेशी कपड़े की सब से पहली दुकान आर्यभाइयों की ओर से ही खोली गई। इन बातों से इस परिणाम पर पहुचने वाले निश्चय ही भूल करेंगे कि रावी किनारे आर्य महानुभाव गम्भीरता और चिंता की मूर्त्ति बने रहते। जहाँ गभीर विचार-विनिमय होता, वहा सभ्य और शिष्ट हंसी-मज़ाक भी। चुटकुलो और कहानियों से वहां हास्यरस के स्रोत फूटते और लोगो के होंटों पर मुस्कानें नाचतीं।

१६११ में, जब महात्माजी ने प्रिंसिपल-पद से त्याग पत्र दे दिया, तब भी यह क्रम जारी रहा। पद-त्याग उन्होंने इस विचार से तो किया ही न था कि कोई अपना धंधा चलायेंगे, अथवा किसी रियासत के मत्री बनेंगे। उनका निश्चय तो आर्य समाज को सर्वतोमुखी उन्नत करना था। बस, रिटायर होते ही वह आर्य-हिन्दु जाति के कल्याण के लिये जुट गये।

पहले पच्चीस वर्षों में भी यद्यपि वह इस आवश्यक कार्य के प्रति उदासीन नहीं रहे, तथापि तब उनका ध्यान बटा हुआ था। अब उन्होंने आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर पूरा ध्यान दिया। नये उपदेशक और प्रचारक रखे गये। आर्य समाजों के उत्सवों पर उन्होंने अब अधिक जाना शुरू कर दिया। बाहर की आर्य-समाजों मे उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और इज्जत थी। वह जहाँ जाते, उनका जलूस निकाला जाता। शहर सजाया जाता।

उत्साह और प्रेम से लोग उन्हें अपनी आँखों पर बिठा लेते। मैं छोटा-सा था; लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है कि जब वह जलालपुर जट्टां जैसे छोटे-से नगर में गये तो वहाँ के आर्य-हिन्दुओं ने सारे बाज़ारों में कपड़े के थान बिछा दिये और बाज़ारों को कपड़ों से छत दिया। इसी तरह बहरामपुर जैसे साधारण-कस्बे में उनका जलूस हाथी पर निकाला गया।

महात्मा हंसराज आर्य समाज के काम में पूरी तन्मयता से व्यस्त थे कि १६१२ में दयानन्द कालिज कमिटी के प्रधान राय-बहादुर लाला लालचंद जज हाईकोर्ट का देहात हो गया। महात्मा जी को उनके स्थान पर प्रधान बनाया गया। अब दो बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य उनके ज़िम्मे थे। प्रतिदिन नियमित रूप से वह दोनों के दफ़्तरों में जाते और सब काम पूर्णरूपेण करते।

एक समय में अनेक काम सम्भालने की उनमें अनोखी प्रतिभा और योग्यता थी।

६.

स्वर्णकार स्वर्ण भट्टी दियो...

महात्मा हंसराज सोना थे। उनके तप, त्याग और बलिदान की चमक दूर दूर तक फैली। लेकिन, भगवान उन्हें कुन्दन बनाना चाहते थे।

जिन दिनों वह कालिज और सभा के कार्य में दिन रात व्यस्त थे, उन्हीं दिनों उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ठाकुर देवी सख्त बीमार हो गईं। श्रीमती ठाकुर देवी ने पति-सेवा को आदर्श माना था। अपढ़ वातावरण में पलने से उनके विचार पहले पौराणिक

थे, परन्तु, जब उन्होंने अपने पति को महर्षि दयानंद के चरण-चिह्नों पर चलते देखा, तो उन्होंने अपना जीवन भी समाज सेवार्थ अर्पण कर दिया। सब से पहले आपने लाहौर स्त्री आर्य-समाज स्थापित की। स्त्री समाज के अपने अलग मंदिर के लिये उन्होंने धन इकट्ठा करना भी शुरू किया। इस कार्य मे उनकी सहायक रायबहादुर लाला लालचन्द जी की सुपुत्री श्रीमती ईश्वरकौर थीं। उन्हें इस कार्य में सफलता मिली और पौड़ियां हरचरण में स्त्री आर्य समाज का मंदिर बन गया। इस मंदिर मे आर्यपुत्री पाठशाला और विद्या ग्रहण करने वाली देवियों के लिये एक आश्रम भी खोला गया। इन दोनो संस्थाओ का प्रबन्ध भी माता ठाकुर देवी जी करती थीं। एक बार उन्हें प्रात काल सूचना मिली कि आश्रम में बर्तन नहीं हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि बर्तन जुटा कर ही पानी पिऊंगी। उनकी यह प्रतिज्ञा पूरी हुई। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि माता ठाकुर देवी ने जितना रुपया इकट्ठा किया, वह स्त्रियों से ही लिया।

माता ठाकुर देवी ने शहर के गली कूचों में स्त्रियों में प्रचार की प्रथा भी डाली। स्त्री आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में उन्होंने जीवन भर दिया। संक्षेपत:, इस देवी ने हर प्रकार से अपने पति के जीवन-उद्देश्य को पूरा करने में सहयोग दिया। महात्मा जी सादगी पसंद करते थे, इन्होंने कभी ठाठ-बाट की माँग नहीं की। थोड़े से रुपयों में ही घर का समुचित प्रबन्ध करतीं। ऐसी देवी का बीमार पड़ जाना एक भारी विपत्ति थी। इस विपत्ति ने और भी उग्ररूप धारण कर लिया, जब १९१४ में दिल्ली षड्यन्त्र केस में महात्मा जी के बड़े सुपुत्र श्री बलराज को पकड़ लिया गया। यह मुकद्दमा महात्मा जी के लिये एक कड़ी

परीक्षा था।

बलराज

महात्माजी के बड़े भाई लाला मुल्कराज वज़ीराबाद में रहते थे। माता ठाकुर देवी भी वहीं थीं कि १८८६ मे बलराज का जन्म हुआ। पुत्र-जन्म पर बधाई का तार भेजते हुये ताऊ ने लिखा, 'पुत्र पैदा हुआ। मैंने उसका नाम बलराज रखा है। चाहता हूँ कि वह देश पर बलि हो।" कदाचित् उन्हें मालूम न था कि देश के नाम पर इस बालक को किन-किन कष्टों का सामना करना पडेगा।

बलराज जी की शिक्षा दयानन्द हाईस्कूल मे शुरू मे हुई; परन्तु, बीच मे ही उन्हें ब्रह्मचारी आश्रम में भेज दिया गया। यह आश्रम लाला रामप्रशाद बी० ए० की देखरेख में जारी हुआ था, पर अधिक दिन चल नहीं सका। इसलिये बलराज जी को फिर दयानन्द हाई स्कूल में आना पड़ा। स्कूल के बाद दयानन्द कालिज से उन्होंने इतिहास लेकर बी० ए० किया। विद्यार्थी जीवन में आपने नव-युवकों के सुधार की ओर ध्यान दिया। आर्य युवक समाज को उन्नत दशा तक ले जाने वाले आप ही थे। आपकी देखरेख में आर्य-समाज प्रचार संबन्धी कई पुस्तिकायें भी छपीं।

ग्रेजुएट होने के बाद महाराज सर प्रतापसिंह के सुपुत्रों को पढाने के लिये वह जोधपुर चले गये। परन्तु, वहाँ अधिक दिन आपका जी नहीं लगा। १९१३ में और शिक्षा प्राप्त करने के लिये वह लौट आये। उन दिनों दयानन्द कालिज में इतिहास के एम० ए० की श्रेणियां न थीं, इसलिये वह गवर्नमेंट कालिज में दाखिल हो गए। इसके साथ ही उन्होंने पुस्तिकायें प्रकाशित

करने का क्रम फिर जारी कर दिया। आर्य युवक समाज को एक बार फिर जाग्रत कर दिया। आर्य समाज मंदिर अनारकली का हाल दयानन्द कालिज के विद्यार्थियों और अन्य कालिज के नवयुवकों से भर जाया करता था।

१६ फर्वरी १६१४ के दिन बलराज जी अपने मित्र खुशीराम जी के पास बैठे हुये थे कि अचानक वहाँ पोलीस ने छापा मारा और खुशीराम जी को गिफ्तार कर लिया। अगले दिन पोलीस बलराज जी के कमरे की तलाशी लेने के लिये पहुंच गई। कोई आपत्तिजनक चीज़ तो नहीं मिली, परन्तु बलराज जी को गिरफ्तार कर लिया गया। पोलीस इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुई। उन्होंने महात्मा हंसराज के मकान की भी तलाशी लेनी शुरू करदी। बलराजजी का कमरा शेष घर से सर्वथा अलग था, इसलिये लोग महात्मा जी की तलाशी का कारण समझ नहीं सके। पोलीस को शायद यह भी पता न था कि उसे तलाश किस चीज़ की है? इसलिये बेमतलब ही इधर उधर छानबीन करने लगी। कागज का छोटे से छोटा टुकड़ा, लिखा, छपा या टाइप किया हुआ उन्होंने छान मारा। जब कुछ न मिला तो यूनिवर्सिटी कैलेण्डर की सब पुस्तकें अपने अधिकार में करलीं। महात्मा जी की दैनिक स्वाध्याय की पुस्तके, पवित्र ग्रंथ, वेद भगवान और शास्त्रों को एक गाड़ी में भरकर पोलीस ले गई। इतना जोखिम उठाने पर भी पोलीस को एक भी चीज़ ऐसी नही मिली, जिसे वह अपने मतलब का कह सकती, अथवा अदालत में पेश कर सकती।

इस अनुचित, कानून विरुद्ध और अन्यायपूर्ण तलाशी से चारों ओर रोष फैल गया। उसके विरुद्ध एक तीव्र विरोध

किया गया। पजाब के समाचार पत्रों ने धार्मिक नेता के प्रति इस अनुचित बर्ताव को घृणा-दृष्टि से देखा। पंजाब से बाहर भी इस के विरुद्ध रोष प्रदर्शित किया गया।

बलराज जी पर क्रांतिकारी दल का सदस्य होने के अभियोग मे मुकद्दमा चलाया गया। यह क्रांतिकारी दल वही था, जिसके सम्बन्ध में कहा गया कि श्री राश बिहारी घोष ने योरुपियन और अन्य सरकारी लोगों की हत्या के लिये संगठित किया था। लाहौर के लारेंस बाग मे एक बम फटा, इससे राम पदार्थ नाम का चपरासी मर गया। पोलीस का विचार था कि यह किसी गहरे षड्यंत्र का परिणाम है। ४ मार्च १६१४ को बलराज जी को अदालत मे पेश किया गया। पन्द्रह दिन का रिमाण्ड स्वीकार करते हुए मैजिस्ट्रेट ने १६ मार्च का दिन सुनवाई के लिये नियत किया।

मुकद्दमे की सफाई की तैयारियां हो रही थी कि १५ मार्च को पता लगा कि बलराजजी को दूसरे अभियुक्तों के साथ दिल्ली ले जाया जाना है। सरकार की ओर से इस मुकद्दमे को दिल्ली बदलवाने के लिये प्रार्थना-पत्र दिया गया था। चीफ कोर्ट ने न अभियुक्तों को और न उनके सम्बन्धियो अथवा वकीलो को इसकी सूचना दी और एक पक्षीय कार्यवाही करके मुकद्दमा दिल्ली बदल दिया। १७ मार्च को मैजिस्ट्रेट के सामने मुकद्दमा पेश हुआ। अभियुक्तों ने अपने वकीलों की अनुपस्थिति में मुकद्दमे में भाग लेने से इन्कार कर दिया। विवशता मुकद्दमा २४ मार्च तक स्थगित किया गया।

महात्मा हंसराज जी ने मुकद्दमे को फिर लाहौर बदलने की प्रार्थना की। परन्तु, चीफकोर्ट ने दोनों पक्षों को सुनकर प्रार्थना

अस्वीकार करदी। २४ मार्च को मुकद्दमा शुरू हुआ। बलराजजी की ओर से महात्मा जी के गहरे मित्र और निष्काम वकील श्री पंडित लखपतराय जी और लाला काशीराम जी वकील थे। अब तक बख्शी टेकचन्द डाक्टर गोकुलचन्द नारंग और श्री भक्त मधुसूदन बैरिस्टर उनकी सहायता किया करते। दीनानाथ इस मुकद्दमे का सरकारी गवाह था। उसके अतिरिक्त १६३ गवाह और पेश किये गये। सरकारी वकील की सम्मति थी कि अभियुक्तों को भारत दण्ड विधान की धारा १२० ब. के आधीन सैशन सुपुर्द किया जाय, परन्तु, मैजिस्ट्रेट ने धारा ३०२ और १२० ब के आधीन सब अभियुक्तों को सैशन सुपुर्द कर दिया।

२१ मई को मुकद्दमा श्री हैरिसन सैशन जज के सामने शुरू हुआ। यहाँ भी बलराज जी की ओर से पंडित लखपतराय और लाला काशी राम ही पेश हुए। ग्राण्ड होटल के एक भाग में सुनवाई होती। दूसरे लोगों का प्रवेश बहुत कठिन था। २६ मई को श्री सी० आर० दास को सलाह मशविरे के लिये बुलाया गया। बख्शी टेकचन्दजी की सहायता से श्री दास ने एक मौलिक आक्षेप किया कि कानून के अनुसार स्थानीय सरकार की स्वीकृति के बिना सैशनजज को यह मुकद्दमा सुनने का अधिकार नहीं। श्रीदास केवल एक सप्ताह के लिये आये थे, इसलिये वह २६ मई को लौट गये।

सरकार की मानवता

इधर यह मुकद्दमा चल रहा था, उधर बलराज जी की माता जी की बीमारी चिंता-जनक रूप धार गई। ४ जुलाई को अदालत अपना काम शुरू करने ही वाली थी कि लाहौर से महात्मा हंसराज जी का तार आया कि बलराज जी की माता

मृत्यु शैया पर पड़ी है। बलराज जी को जमानत पर रिहा कराने के लिये एक दर्खास्त दी गई, जिससे वह अपनी माँ के अन्तिम दर्शन कर सके। सैशन जज ने कहा कि अभियुक्त केवल पोलीस की हिरासत में ही लाहौर जा सकता है। यह सूचना तार द्वारा महात्मा जी को दी गई। यद्यपि इस बात का डर था कि हथकड़ियों से जकड़े बेटे को देख कर माँ के मन पर उलटा ही प्रभाव न पड़े, तथापि महात्मा जी ने यह शर्त स्वीकार करली।

बेटे को देखने की आस ने मरणोन्मुख माँ के श्वास बढ़ा दिये, परंतु, एक दूसरी तार से यह आस टूट गई। दिल्ली से सूचना आई कि पोलीस ने बलराज जी को लाहौर ले जाने की जिम्मेदारी लेने से इन्कार कर दिया है। जिस किसी ने भी यह समाचार सुना, आश्चर्यचकित रह गया। इतने बड़े साम्राज्य की इतनी शक्तिशाली पोलीस हथकड़ियों और बेड़ियों में जकड़े एक नौजवान को दिल्ली से लाहौर नहीं ला सकी! मानवता की दुहाइ देने वाली अंग्रेज हकूमत के कल-पुर्जे का दिल इस नाजुक समय में भी नहीं पसीजा। कानून का मान करने वाले अंग्रेज सैशनजज ने पोलीस की प्रार्थना पर अपनी पहली आज्ञा भी रद्द कर दी।

आस ने जो श्वास बांधे थे, वह उखड़ गये। ७ जुलाई की रात का बेटे को मिलने की अन्तिम अभिलाषा लिये माता ठाकुर देवी जी परलोक सिधार गईं।

मुकद्दमा चलता रहा। १६ अगस्त को बलराजजी ने अपना लिखित बयान दिया। २७ अगस्त को मिस्टर नॉर्टन साहब को पैरवी के लिये नियत किया गया। मिस्टर नॉर्टन फौजदारी मुकद्दमों के प्रख्यात वकील थे। उन्होंने बहस करते हुए कहा यह बात किसी

तरह भी प्रमाणित नहीं हो सकी कि बलराज ने षड्यन्त्र में किसी तरह का भाग लिया। अधिक से अधिक यही प्रमाणित हो सका है कि कुछ अभियुक्त बलराज के परिचित थे, और इस बात से कोई इन्कार भी नहीं करता। १ सितम्बर को असैसरों की राय ली गई, तो तीन में से दो ने बलराज जी निर्दोष बताया। १५ अक्तूबर को मुकद्दमे का फैसला सुना दिया गया। बलराजजी को दो साथियों सहित आजीवन काले पानी का दण्ड और शेष दो को फांसी का दण्ड दिया गया।

चीफ कोर्ट की अपील जस्टिस सर डी० जवान्स्टन और मस्टिर जस्टिस रैटिगन ने सुनी। बलराज जी की ओर श्री बीची वकील थे। बख्शी टेकचन्द और पंडित लखपतराय उनके सहायक थे। ८ फर्वरी १९१५ को बहस हुई और १० फर्वरी को फैसला सुना दिया गया। बलराज जी की सज़ा 'घटाकर सात बरस कर दी गई।

माननीय जजों ने इस बात को सिद्ध माना कि विभिन्न स्थानो पर विभिन्न प्रकार से योरुपियन और सरकारी लोगो की हत्या के सन् १९०८ से ही षड्यंत्र हो रहे हैं। यद्यपि इस बात का कोई प्रमाण नहीं, तथापि यह स्पष्ट है यहाँ कोई न कोई षड्यत्र अवश्य है और अभियुक्तों का उसके साथ कुछ न कुछ संबन्ध भी अवश्य है। बलराज के बारे में इतना जरूर कहा जा सकता है कि रामपदार्थ की हत्या से पहले उसका दल के साथ कोई संबन्ध न था। परन्तु, राम पदार्थ की मृत्यु के बाद वह दल का सदस्य बना और 'लिबरटी पोस्टर' के वितरण में भी पर्याप्त काम किया। खुशीराम के घर उसका जाना षड्यंत्र से ही संबंधित था, पुस्तक लेने के लिये नहीं। दीनानाथ

(सरकारी गवाह) की गवाही के अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं कि अभियुक्त ने विज्ञापन खुशीराम से लेकर बांटा। इसलिए धारा ३०८/११६ के आधीन सात वर्ष का कड़ा दण्ड दिया जाता है, जो कि उस धारा के आधीन अधिक से अधिक दिया जा सकता है।

मिस्टर नॉर्टन की राय थी कि प्रीवी कौंसिल में अपील की जाय तो अभियुक्त बिल्कुल छूट जायगा। परन्तु, उन्हीं दिनों युद्ध छिड़ जाने के कारण उचित प्रबंध न हो पाया और अपील न हो सकी।

लहरें और चट्टान

कष्ट कभी अकेला नहीं आता।

पत्नी मृत्यु का शिकार हो चुकी थी और बेटा मौत से जूझ रहा था कि भाई को आर्थिक संकट ने आ दबोचा। लाला मुल्कराज जी उन दिनों पंजाब को-आपरेटिव बैंक के मैनेजिंग डायरैक्टर थे। समय के फेर से पीपल्ज़ बैंक टूटा तो कोआपरेटिव बैंक को भी बहुत से रुपये का भुगतान करना पड़ा। इन्हीं दिनों महात्मा जी के छोटे लड़के योधराज जी को निमोनिया होगया।

एक साथ इतनी विपदाओं से कौन नहीं घबरा उठता? परंतु, महात्मा हंसराज उसी तरह गंभीर और शांत थे। उन्हों ने एकबार भी दुख प्रदर्शित नहीं किया। उनके मुख की भावभंगी देखकर कोई कह नहीं सकता था कि इस अकेले व्यक्ति पर मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़े हैं। आर्य समाज का काम वह नियम पूर्वक करते। मिलने वालों से खुशी-खुशी और हंसमुख से मिलते। और इन विपदाओं का सामना करने के लिये हाथ

पाँव भी मारते। इतना धैर्य और संतोष अटल ईश्वर विश्वास के बिना असंभव है।

कष्टों और दुखों से झुंझला कर एक बार उनकी बेटी ने कहा, "पिता जी! क्या अब भी परमात्मा है?" महात्माजी को बेटी का डगमगाता विश्वास देखकर दुख हुआ। कहने लगे, "है बेटी, परमात्मा है और वह जो करता है, ठीक करता है।"

बलराजजी के मुकद्दमे में महात्माजी वकीलों की तरह हर बात की ओर ध्यान दिया करते; परंतु, समाज-सेवा के काम में उन्होने कोई बाधा आने नही दी। वह स्वयं किसी से मुकद्दमे की चर्चा न छेड़ते। उनके निश्चल धैर्य को देखकर उनके मित्र दंग रह जाते। बलराज जी सैशन सुपुर्द हो चुके थे और महात्मा जी लाहौर लौट रहे थे कि अचानक जालंधर स्टेशन पर लाला राधा राम जी से उनकी भेंट होगई। लाला राधाराम ने उन्हे विवश करके वहीं उतार लिया। महात्माजी दिन भर वहीं रहे। अनेकों विषयों पर बातचीत होती रही; परंतु, मुकद्दमे का उल्लेख तक महात्माजी ने न किया। अगले दिन समाचार पत्रों द्वारा ही जालंधर-निवासी सैशन सुपुर्द होने की बात जान पाये।

मुकद्दमा लड़ने के लिये महात्मा जी के मित्रों ने श्री चितरंजन दास और मिस्टर नॉर्टन के नाम तजवीज किये। श्री दास अठारह हजार रुपया मासिक लेते थे और मिस्टर नॉर्टन इससे भी अधिक। मित्रवर यह सारा खर्च प्रसन्नता से सहने को तैयार थे। परतु, महात्मा जी ने किसी से एक पैसा लेना भी पसंद न किया। महात्माजी के पुराने शिष्य श्री चितरंजन दास को नियत करने के लिये कलकत्ते गये और वहाँ कई मित्रों ने

मुकद्दमा सुचारू रूप से लड़ने के लिये रुपया भी इकट्ठा कर डाला। इस पर लाला दीवान चंद ने कहा, "महात्मा हंसराज इस बात को पसंद नहीं करेंगे, और सभव है, वह बलराज जी को ऐसे वकीलों से असहयोग करने के लिये कह दें।"

महात्माजी अपने परम मित्र पंडित लखपतराय और लाला काशी राम के अनुरोध की अवहेलना नहीं कर सके। यह दोनों महानुभाव अवैतनिक ही काम करते रहे। इन दिनों पंजाब में ओडवायर का आतंक था। किसी क्रांतिकारी अभियुक्त की पैरवी करना अभियुक्त से सहानुभूति करने के बराबर था। इसलिये अनेकों वकील ऐसे मुकद्दमे हाथ में लेने से डरते थे। किसी कार्य वश जब एक बार लाला काशीराम ओडवायर से मिले तो उसने स्पष्ट शब्दों में लालाजी के इस कार्य के प्रति असंतोष प्रकट किया। परन्तु, लाला काशीराम किसी से दबने वाले न थे।

सज़ा होने के बाद बलराज जी से कहा गया कि यदि वह क्षमा याचना करें, तो संभव है, सरकार उन्हे रिहा करदे। बलराजजी ने साफ इन्कार कर दिया। कुछ लोगों ने कहा कि पिताजी की सलाह ले लो। महात्माजी से पूछा गया तो उन्होंने तत्काल लिखकर भेजा, "यदि तुम अपने को अपराधी समझते हो, तो सज़ा काटकर उसका प्रायश्चित करो। और यदि तुम्हारा कोई अपराध नहीं, तो सरकार को चाहिये कि तुम्हें छोड़ दें। क्षमा मांगने का सवाल ही पैदा नहीं होता।"

जब तक मुकद्दमा चलता था, तब तक अभियुक्त को घर से खाने-पीने के लिये चीज़ें भेजी जा सकती थीं। बलराजजी को फल भेजे गये, तो उन्होंने यह कह कर लौटा दिये कि शीघ्र

ही मुझे इन सब चीज़ों के बिना गुज़ारा करना पड़ेगा। तब महात्माजी ने कहा, "बेटा! जब तक तुम्हें मिलते हैं, भगवान के दिये पदार्थों का भोग करो। केवल इतनी इच्छा मत रखो कि न मिल सकने पर भी उनकी चाह रहे।"

ईस्टर के दिनों में अदालत बंद थी। महात्मा जी झट लाहौर आ गये और दयानन्द कालिज के वार्षिकोत्सव के संबंध में पूरी तन्मयता से काम में जुट गये। अक्तूबर में बलराजजी को काले पानी की सज़ा हुई और इसके थोड़े ही दिन बाद जब आर्य समाज का वार्षिकोत्सव हुआ तो महात्मा जी ने उसी निश्चिंत भाव से आर्य समाज और कालिज के लिये अपील की।

लहरें चट्टान से माथा फोड़ कर पलट गईं। सोना कुन्दन बन गया।

७.

परोपकारा कारणे संतन धरा शरीर

जलता हर कोई है, लेकिन, जलना उसका, जो पराई आग जले।

हंसराज ने इस तत्त्व को तब पहचाना था, जब अभी वह बालू के घरोंदों से खेला करते। घुट्टी में मिला यह स्वभाव दिनों के साथ पनपने लगा। महात्मा जी की लंबी आयु का एक-एक दिन आप को परोपकार मे रत दीखेगा। उन का एक एक क्षण पर-दुःख-हरण में व्यतीत हुआ।

आर्य समाज की स्थापना से पहले भारतीयों की यह अवस्था हो चुकी थी कि इसको उसके दर्द से कोई सरोकार नही। कोई मुंह से सहानुभूति तक प्रदर्शित न करता। कही दुर्भिक्ष पड़े या भूकंप आये, किसी की बला से। जिस के सर आ पड़ी, उसने झेली। महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, पंडित लखपतराय और आर्य समाज के अन्य नेताओं ने देखा कि भ्रातृभाव और आपसी सहायता की भावना का सर्वथा लोप हो चुका है। अपने बालपन से उन्होंने इस भावना को पुनर्जीवित करने का संकल्प किया किया। वेद भगवान की यही आज्ञा है कि एक दूसरे का हाथ बटाओ, गिरों को उठाओ, जो कमाओ, अकेले नहीं बॉट कर खाओ, मूर्ख और निर्बल लोगों की सहायता करो।

१८९५

इधर भारत मे भ्रातृभाव का स्रोत सूखा, उधर बीकानेर में पानी सूख गया। बिन पानी खेती नही होती। बरसों एक बून्द न पड़ी, तो खेतियां सूख गईं। खाने को दाना न रहा, पीने को पानी न रहा। भयंकर दुर्भिक्ष आग उगलते रूखे-सूखे खेतों पर ताण्डव करने लगा। भूख से बिलबिलाते लोग प्यास से तड़प तड़प कर मरने लगे। घर उजड़ गये, घर वाले बिखर गये।

बीकानेर का दर्द पंजाब के दिल मे जगा। महात्मा हंसराज और लाला लाजपतराय उन दिनों 'आर्यगजट' के सम्पादक थे। उन्होंने दुर्भिक्ष के संबन्ध मे रोमांचकारी लेख लिख कर लोगों का ध्यान अकाल पीड़ितों की ओर खैंचा। आर्य समाज अनारकली लाहौर का जरूरी अधिवेशन बुलाया गया और आर्य समाज की ओर से शीघ्र सहायता पहुंचाने का निश्चय

किया गया। महात्मा हंसराज ने दयानन्द कालिज के विद्यार्थियों से अपील की कि सिसकती मानवता को बचाने के लिये आगे आयें। अपील करने की देर थी, कई होनहार विद्यार्थी स्वयंसेवक बन गये और बीकानेर के तपते-जलते इलाकों की ओर सेवा करने के लिये चल पड़े। भूखों को अन्न दिया गया। प्यासों को पानी।

इस दुर्भिक्ष के संबंध मे न्यूयार्क के 'क्रिश्चिन हैरल्ड' मे लिखा, "माताये अपने बच्चे एक मुट्ठी अन्न के लिये बेच देती हैं।" इसाइयों ने लोगों की निस्सहायावस्था का 'लाभ' उठाते हुये सैंकड़ों बच्चे अपने अधिकार मे कर लिये। परन्तु, जब आर्यसमाज की ओर से सहायता का कार्य आरंभ हुआ और गॉव-गॉव मे दयानन्द कालिज के स्वयं-सेवक पहुंचे, तो इसाइयों के यत्न निष्फल होने लगे। बीकानेर से सहस्रों निराश्रय बच्चे आगरा, भिवानी और फिरोज़पुर के आर्य अनाथालयों में भेजे गये। भारत के इतिहास मे वह पहला अवसर था कि कही लोगों पर विपदा आ पड़ी हो, और इस तरह विस्तृत-रूप से उन्हे बचाने की चेष्टा की गई हो। आर्यसमाज की शिक्षा और महात्मा हंसराज जी के पुरुषार्थ ने परस्पर सहायता की भावना को फिर जागृत कर दिया। सहस्रों अकाल पीड़ित मौत के मुंह से बचा लिये गये। हज़ारों बच्चों की रक्षा की गई। इस सेवा कार्य ने चारों ओर आर्यसमाज के प्रशंसक पैदा कर दिये।

सन् १८६५ के इस दुर्भिक्ष से केवल बीकानेर मे ही मृत्यु का ताण्डव नहीं हुआ; मध्य भारत के कई भागों मे भी इसने अपना प्रकोप दिखाया। आर्यसमाज ने वहाँ भी सहायता पहुंचाई। महात्मा जी और लाला लाजपतराय दिन-रात इसी

कार्य में तत्पर रहते। यह दुर्भिक्ष इतना फैल गया था कि बीस लाख व्यक्ति काल का ग्रास हो गये। वे दिन आज से सर्वथा भिन्न थे। सहायता कार्य करने वाली या तो सरकार थी, या ईसाई। सरकार अपना काम भी ईसाइयों के ही द्वारा करवाती थी। इससे सब निराश्रित बच्चे उन्हीं के सुपुर्द किये जाते। ऐसी परिस्थिति मे काम करना बहुत कठिन था। तो भी लालाजी की मर्मस्पर्शी अपीलों और महात्माजी की दिन-रात की लग्न ने दयानन्द कालिज और आर्यसमाज मे ऐसे सेवक पैदा कर दिये, जिन्होंने जान जोखिम में डालकर हिन्दू-बच्चों को विधर्मियों के हाथों से और लाखों लोगों को मौत के मुँह से बचाया।

अकाल पीड़ितों की सेवा का कार्य १८६५ से १८६७ तक जारी रहा। इन दो वर्षो मे अनथक परिश्रम और आदर्श सेवा से सरकार और जनता पर आर्यसमाज की धाक बैठ गई।

१८६६

अभी पहले अकालपीड़ितों के घाव भरे न थे कि १८६६ में दुर्भिक्ष ने फिर आक्रमण किया। आर्यसमाज देख चुका था कि दुर्भिक्ष के दुर्दिनों मे ईसाई किस तरह अनुचित लाभ उठाते हैं। इस लिये तत्काल ही सेवाकार्य आरम्भ कर दिया गया। प्रसिद्ध आर्य दार्शनिक लाला दीवानचन्द जी एम० ए०[१] उन दिनों दयानन्द कालिज में पढ़ते थे। महात्मा हंसराज जी की पारखी

---

१. बाद में यही लाला दीवानचन्द दयानन्द कालिज कानपुर के प्रिंसीपल, आगरा यूनिवर्सिटी के वाईस-चासलर और दयानन्द कालिज कमिटी के प्रधान बने।

आँखों ने इस कार्य के लिये उन्हे चुना और उन्हे सारी स्थिति का अध्ययन करने के लिये राजपूताना भेज दिया। लाला दीवानचन्द सारे राजपूताने का दौरा करके लाहौर लौटे। उन्होंने सहायता कार्य की एक योजना बनाई और उसी के अनुसार काम शुरू कर दिया गया। इस सहायता कार्य के सम्बन्ध मे लाला लाजपतराय जी अपनी पुस्तक 'आर्यसमाज' मे लिखते है

" बहुत सी देसी रियासतों में हमारे कार्यकर्ता बड़े अधिकारियों से मिले और उन पर अनाथों और बेघरों के प्रति उनके कर्तव्य को जताने का यत्न किया। उनको बताया कि अनाथों की पालना, उनको इसी देश मे रखना और भूख से बचाना रियसतों के अपने हित की बात है। इस के साथ ही उन्हों ने यह बताया कि दूर देशों में जाकर यह अनाथ दूसरे धर्मो मे चले जायेंगे।

"हमारे प्रचारक एक पवित्र लड़ाई लड़ रहे थे। हमारा काम राजपूताने मे किसी के विरुद्ध आन्दोलन चलाना न था। ना ही हमारे पास साधन और शक्ति थी और न ऐसा करने का हम कोई इरादा रखते थे। हमने अपनी जाति के बहुत से भाइयो के धर्म परिवर्तन करने पर चिन्ता प्रकट की और तत्काल ही उसकी ओर ध्यान दिलाने की कोशिश की, लेकिन, हमें जल्दी ही अनुभव हुआ कि इस तरह से कुछ न बनेगा। इस से न तो रियासतों को कोई लाभ होगा और न ही अंग्रेजी इलाके को। केवल कुछ सौ पीड़ितों को पंजाब लाकर दुर्भिक्ष के अन्त तक उनके पालन पोषण का प्रबन्ध करना होगा। इसलिये हमने हिसार आर्यसमाज के जिम्मे अनाथों की सहायता का काम सौंपा।

"राजपूताना में हमारे कार्यकर्ता बार बार अधिकारियों से स्वयं मिले, परन्तु, उन्हें सफलता न हुई। यद्यपि हमारे पास सबूत भी थे कि बहुत से हिन्दु उनके द्वारा समय समय पर इसाई प्रचारकों के दिये गये, जिन्होंने कि उन को भारत मे दूर दूर प्रदेशों मे भेजा। बम्बई मे हमारे कार्यकर्ता सूरत और बड़ौदा तक गये और हिन्दुओं को उनका जाति के अनाथों के प्रति कर्तव्य जताया। हमारे कार्यकर्ताओं के दौरों और अनाथों की देख भाल करने का बहुत प्रभाव हुआ। इस से हमे यह सन्तोष हुआ कि हमने यथा शक्ति काम किया है।

"इसी प्रकार हमने काठियावाड़, सी० पी० और बम्बई के कुछ हिस्सों मे सफल आन्दोलन द्वारा १४००० बच्चों को बचाया उनकी रक्षा के लिये हमने पंजाब मे कई नए अनाथालय खोले। उनमें से कुछ अस्थाई थे। हर वर्ग के हिन्दुओं ने इस काम मे हमारी सहायता की।

"आख़िरकार सरकार ने भी हमारे काम को सराहा और कुछ अनाथ हमारे अनाथालयों मे भी भेज दिये गये। और कुछ थोड़ी सी आर्थिक सहायता भी अकाल के अन्त मे ग़ैर-सरकारी अकाल फंड से हमे दी गई।"

१६०५

ज़िला कांगड़ा मे प्रलयंकरी भूकम्प ने तबाही मचादी। हज़ारों नर-नारी मकानों के तले दब गये। समाचार पाते ही महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय और रायबहादुर बक्षी सोहनलाल ने तत्काल सहायता पहुंचाने का निश्चय किया। आर्य-स्वयं-सेवकों ने सब से पहले मलबे में दबे नर नारियों को

निकाला। घायलों की मरहमपट्टी की। मृत लोगों की अंतिम क्रिया की और बेघरों के लिये झोंपड़े बनाये।

ज़िला कांगड़ा के भूकम्प के सम्बन्ध में जो सरकारी विवरण छपा, उससे प्रकट होता है कि सब से पहले सहायता-कार्य करने के लिये वहाँ आर्य-स्वयं-सेवक ही पहुंचे। स्वयं सेवकों का पहला जत्था बक्षी सोहनलाल जी स्वयं लेकर गये। दयानन्द कालिज के विद्यार्थी हाथों में कुदाल और सिरों पर मिट्टी की टोकरियाँ उठाये दिखाई देते। आर्य समाज के डाक्टरों ने मरहम-पट्टी का काम किया। महात्मा हंसराज जी ने इस सारे कार्य को स्वयं संगठित करके हज़ारों लोगों के प्राण बचा लिये। इस अवसर पर लगभग पचास हज़ार रुपया ख़र्च किया गया।

१९०७-८

भगवान राम की जन्मभूमि अवध भी दुर्भिक्ष के प्रकोप से बच न सकी। १९०७-८ में वहाँ भी मौत का देवता नाचने लगा। महात्मा जी के कानों में जब अवध निवासियों की करुणा-जनक आवाज़ पड़ी, तो उन्होंने उसी समय सहायताकार्य आरम्भ कर दिया। प्रिंसिपल मेहरचन्द, लाला बलराज, लाला हरिचन्द कपूर, पंडित रलियाराम बजवाड़िया अन्य कई साथियों के साथ वहाँ पहुंच गये। अकाल-पीड़ितों को सक्रिय सहायता मिलने लगी। जो सज्जन दान का अन्न लेने से झिझकते थे, उनकी सहायतार्थ सस्ते अनाज की दुकानें खोलीं गई। अनुमान है कि इस सहायता से कम से कम पन्द्रह हज़ार नर-नारियों के प्राण बचे।

इन्हीं दिनों मुलतान के इलाके में प्लेग की महामारी ने आक्रमण किया। भाई भाई को छोड़ गया। माँ बेटी से और बेटी माँ से विमुख हो गयी। बाप ने बेटे को और बेटे ने बाप को छोड़ दिया। सहस्रों नर-नारी इस नारकीय रोग से मरने लगे। महात्मा जी को पता लगा कि वहाँ रोगियों को पानी तक पिलाने वाला कोई नहीं। तभी उन्होंने आर्य प्रदेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से सहायता पहुंचाने का निश्चय किया। परन्तु, मौत के मुँह मे कौन जाय? धधकते अंगारों मे कौन कूदे?

तब महात्माजी के परम भक्त पंडित रलियाराम जी बजवाड़िया सर हथेली पर रख आगे बढ़े। अपने कुछ साथी लेकर वह मुलतान पहुंच गये।। प्लेग के रोगियों की सेवा मे उन्होंने अपने प्राणों की भी परवाह नही की। लाखों को अपने कंधों पर उठाकर ठिकाने लगाते। वमन करते रोगियों की सेवा करते। यहाँ तक कि एक रोगी की प्लेग की गिल्टी उन्होंने दांतों से काट दी और उसे मरने से बचा लिया। इस निष्काम सेवा से लोगों के दिलों मे आर्यसमाज और उसके सेवकों के प्रति गहरी श्रद्धा की भावना पैदा हो गई। महात्मा हंसराज जी के इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा हिंदुओं. मुसलमानों, इसाइयों, यहाँ तक कि सरकार ने भी की। पंडित रलियाराम जी के सम्बन्ध मे इसाई-सहायकों के नेता ने कहा, "एक सच्चा सेवक यहाँ पहुंच गया है। अब हमारी आवश्यकता नहीं रही।"

१६१८

गढ़वाल भारत का सुन्दर पहाड़ी प्रदेश है; परन्तु, दुर्भाग्य से यहाँ प्रायः अकाल हुआ करते हैं। १६१८ में तो अकाल

साक्षात काल बन गया। लोग भूख से मरने लगे। महात्मा जी ने स्वामी नित्यानन्द, लाला हरिचन्द कपूर, पंडित मस्तानचन्द, लाला जगराज भल्ला और मुझे गढ़वाल भेजा। आर्य-सेवकों का यह जत्था गढ़वाल के विस्तृत प्रदेश मे घूम घूम कर अन्न बांटने लगा। महात्मा जी ने इस कार्य के लिये चौरासी हज़ार रुपया इकट्ठा किया। गढ़वाल को सहायता पहुंचाने के लिये तीन भागों में बॉट कर स्वयं भी वहाँ पहुंच गये। इन ऊबड़ खाबड़ पहाड़ियों मे सैकड़ों मील पैदल यात्रा करके अकाल पीड़ितों को सहायता पहुंचाई। दुर्गम मार्गों मे चलने के कारण महात्मा जी घायल हो गये और उन्हे लाहौर लौटना पड़ा। इस सहायता से लगभग पचास हज़ार नर-नारियों की प्राण रक्षा हुई।

एकत्रित धन मे से जो रुपया बच गया, उससे बूड़ी में दयानन्द हाई स्कूल और और दोगड्डा मे एक प्राइमरी स्कूल खोला गया। पुनः अकाल होने पर उसमे से सहायता भी दी गई।

१९२०

गढ़वाल का अकाल अभी जारी ही था कि उड़ीसा से अकाल पीड़ितों की टेर सुनाई दी। महात्माजी ने आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के उपदेशक महता सावन मल जी को दयानन्द कालिज के कुछ विद्यार्थी देकर वहाँ भेजा। साखी गोपाल और दामोदरपुर में केन्द्र बनाकर दो सौ ग्रामों के लगभग साढ़े सात हज़ार नर-नारियों को मृत्यु के चंगुल से बचाया गया।

इन्हीं दिनों तीसरी ओर छत्तीसगढ़ मे भी दुर्भिक्ष ताण्डव करने लगा। क्षुदातुर लोगों ने अपने रहने के झोंपड़े तक बेच डाले। सहस्त्रों नर-नारी भोजन की खोज में यहाँ-वहाँ भटकने

लगे। अन्न के लालच से सैकड़ों ने धर्म त्याग दिया। माताओं ने एक एक रुपये मे अपने जिगर के टुकड़े बेच डाले। इन लोगों की सहायता के लिये महात्माजी ने बालिद, दुर्ग, राजनन्द गाँव, अम्बागढ़, पिंडर-पाव आदि स्थानों पर सहायता केन्द्र खोल दिये। इस इलाके से दो सौ अनाथ बच्चे लाहौर, मुलतान और भिवानी के अनाथालयों मे भेजे गये। तीन हज़ार ऐसे नर-नारियों की रक्षा की गई, जो मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे।

१९२१

सारे देश को अन्न खिलाने वाला पंजाब भी १९२१ मे दाने दाने का मोहताज हो गया। शिमला कांगड़ा और जम्मू के इलाकों मे तो लोग भूखों मरने लगे। भिम्बर, नौशहरा, राजौरी कोटली, मीरपुर आदि की ओर तो अन्न और पानी का इतना अभाव हुआ कि पशु तक मर गये। महात्मा जी ने इस सारे क्षेत्र का स्वयं दौरा किया और लौट कर सहायता-कार्य शुरु कर दिया। रियासत जम्मू के अकाल पीड़ित क्षेत्रों मे मुझे और पंडित मस्तान चन्द को भेजा गया। जिला कांगड़ा के कार्य के अध्यक्ष स्वर्गीय लाला हनुमंत दास एडवोकेट नियत किये गये। इसी तरह शिमला-क्षेत्र मे भी सहायता कार्य शुरु कर दिया गया। तीनों क्षेत्रों मे हज़ारों मन अनाज भेजा गया। इससे कम-से-कम एक लाख नर नारियों की सहायता हुई।

१९२१-२२

महात्मा गांधी का अहिंसात्मक संग्राम जारी था। देश भर में हिंदु-मुस्लिम मिलाप था। देश के नेता घोषित कर रहे थे कि एक वर्ष में स्वतंत्रता की देवी के दर्शन भारत वासियों को हो

जायेंगे कि एकाएक मद्रास के एक प्रदेश मालाबार मे एक वीभत्स षड्यंत्र से घृणित आग प्रज्ज्वलित हुई और देखते ही देखते सारा मालाबार इसकी लपटों मे जलने लगा। १९२१ के अंतिम दिन थे कि मालाबार के मोपला कहलाये जाने वाले मुसलमानों ने बिना कारण, बिना किसी उत्तेजना के हिन्दुओं पर आक्रमण कर दिया। मकान जला डाले। मंदिरों को तोड़ फोड़ दिया। सहस्रों हिंदुओं को बलात्कार धर्म से पतित किया गया। दो हज़ार हिंदुओं को केवल इसलिये मौत के घाट उतार दिया गया कि उन्होंने अपना धर्म त्यागने से इन्कार किया था। लोगों की चोटियाँ काट डाली गईं। यज्ञोपवीत जला दिये गये।

मालाबार मे यह अत्याचार हो रहा था, परन्तु, कडे सेंसर के कारण बाहर किसी को पता तक न था। तब बंबई से एक लंबा तार महात्मा जी को प्राप्त हुआ, जिसमे लिखा था कि "हज़ारों हिंदुओं की हत्या हो चुकी है। हज़ारों बल पूर्वक धर्म-भ्रष्ट कर दिये गये है। हज़ारों अनाथ बच्चे और हज़ारों बेबस विधवाये आपकी ओर सहायता के लिये देख रही है।"

महात्माजी ने यह तार सुना तो कहने लगे, "आर्य समाज के होते यह अत्याचार सहन नही हो सकता।" मुझे याद है, महात्माजी उस रात सो नहीं सके। करवटे लेते रात बीत गई। अगले दिन सुबह ही प्रादेशिक सभा की एक बैठक हुई और मालाबार सहायता भेजने का निश्चय किया गया। सभा मे महात्माजी ने कहा, "जागृति के इस समय भी किसी को बल-पूर्वक मुसलमान बनाना हमारे लिये एक बहुत बड़ी ललकार है। इस ललकार का उत्तर दिया जायगा!"

उसी दिन पंडित ऋषिराम बी० ए० को आपद्ग्रस्तों की

सहायतार्थ मालाबार भेज दिया गया। मुझे और पंडित मस्तान चंद को विशेष रूप से इसलिये भेजा गया कि बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये अढ़ाई हज़ार हिंदुओं को फिर अपने धर्म में लौटाया जाय। इसी तरह महता सावन मल और अन्य कार्यकर्ताओं को वहाँ भेजा गया। कालीकट, मायनाड, बिरवान और अन्य ग्रामों मे चावल तथा कपड़े पहुंचाये गये। पहले ही दिन दो हज़ार बे-घरबार नर-नारियों को भोजन दिया गया। धीरे-धीरे यह संख्या बारह हज़ार तक पहुँच गई। जो लोग अपने धर्म और प्राणों की रक्षा के लिये जंगलों मे भाग गये थे, उनको वापिस बुलाया गया। जिनकी चोटियाँ बल पूर्वक काट दी गई थीं, उन्हें लौटाने मे काफी कठिनाई हुई। मोपलों के अत्याचार से हिंदु इतने आतंकित हो गये थे कि शुद्धि का नाम सुनते ही सिहर उठते। शुद्धि के कार्य मे नंबोदरी ब्राह्मणों ने भी कुछ अड़चन डाली। लेकिन, महात्मा हंसराज ने इस कार्य को निरंतर जारी रखने का आदेश दिया।

जान हथेली पर रखकर बलपूर्वक मुसलमान किये गये सब हिंदुओं को इकट्ठा किया गया, और अन्त मे महात्मा जी के आर्य-सेवक अढ़ाई हज़ार के अढ़ाई हज़ार पतित नर-नारियों को फिर हिंदु-धर्म की गोद मे लाने मे सफल हो गये। आर्य समाज के सेवकों ने जिस निर्भीकता और निडरता, जिस तप, त्याग और बलिदान से मालाबार में काम किया; उससे वहाँ के हिंदुओं मे नवजीवन का संचार हो गया। टूटे हुये मंदिरों की मरम्मत भी आर्य समाज ने ही करवाई।

आर्यसमाज ने मालाबार में जो काम किया; इसकी एक

विस्तृत रिपोर्ट[1] छपी है। इस में महात्मा जी लिखते हैं .

"ऐसे दूरवर्ती देश मे जाकर इतनी जल्दी ऐसी सफलता प्राप्त करना पंडित ऋषिराम जी का ही काम था। जिनके दिल मे वैदिक धर्म का प्रेम और हिन्दु जाति के हित की प्रबल भावना है। वह बहुत ही सादा जीवन बिताते हुये काम कर रहे हैं, उनके सरल स्वभाव योग्यता, और कार्य कुशलता ने हमारे काम को सुदृढ़ नींवों पर रख दिया।

"जब काम बढ़ गया तो फरवरी के आरंभ मे लाला खुशहालचन्द खुर्संद और पंडित मस्तान चन्द जी बी० ए० काम में सहायता देने के लिये पंजाब से मालाबार गये। पंडित मस्तान चन्द जी मायनाड केंद्र के अध्यक्ष बनाये गये, यहाँ पर साढ़े चार हज़ार बच्चे और स्त्रियां सहायता प्राप्त करते थे। इतने स्त्री-बच्चों मे अन्न बांटना और उनको प्रसन्न रखना पंडित मस्तान चन्द जी का ही काम था, वह स्वभाव के सरल और हृदय के उदार है। भीषण से भीषण कठोरता सह सकते हैं। गढ़वाल और भिंबर व राजौरी (रियासत जम्मू) के दुर्भिक्षों में काम करने से उन्हे बहुत अनुभव प्राप्त था। इस अनुभव से उन्होंने मालाबार मे पूरा लाभ उठाया।

"लाला खुशहालचन्द जी पहले कालीकट केंद्र मे सहायता देते रहे। आप आर्यसमाज के पुराने सेवक है। अपनी लेखनी, वाणी और सेवा-भाव से बरसों से आर्य समाज का काम कर रहे हैं। उनके स्वभाव में देश और धर्म के प्रति विशेष उत्साह तथा

१ 'मालाबार और आर्यसमाज' (उर्दू) प्रकाशक, मंत्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर। १६२२।

लग्न है। इनके स्वभाव ने मांग की कि वह विद्रोह-ग्रसित क्षेत्रों में जाकर अपनी आँखों से पीड़ित हिंदुओं की अवस्था देखे और उन मुसलमान हुये भाइयों को, जो अभी तक भय-ग्रसित हुये मोपलों के रूप मे रह रहे थे, लालीकट लाने का प्रयत्न करे। इस उद्देश्य से उन्होंने अपने प्राणों को खतरे में डालकर विद्रोही क्षेत्रों का भ्रमण किया उनके प्रयत्नों से और उस भाग के भाइयों की सहायता से बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये हिंदुओं की एक बहुत बड़ी संख्या फिर हिंदु बनाई जा सकी।

" पंडित ऋषिराम जी को सात महीने के कड़े और निरन्तर परिश्रम के बाद आराम की आवश्यकता प्रतीत हुई और वह १७ मई को मालाबार से पञ्जाब आ गये। लाला खुशहालचन्द जी और पंडित मस्तानचन्द जी २२ मई को लाहौर चल पड़े। .. उनके स्थान पर महता सावनमल जी दत्त भेजे गये। .. महता सावनमल जी आर्य-उपदेशक पंडित जगत-सिंह जी के सच्चे शिष्य और आर्यसमाज के पुराने सेवक हैं। उनको सहायता-कार्य का बहुत अनुभव है। उन्होंने गढ़वाल उड़ीसा और छत्तीस गढ के दुर्भिक्ष मे सभा की ओर से अमोल सेवायें की है। कठिनतम कष्टों का सामना करते हुये उन्होंने उड़ीसा और छत्तीस गढ़ मे अनाथों और विधवाओं की सहायता की। छत्तीस गढ़ का काम समाप्त होते ही उन्हें मालाबार मे नियुक्त किया गया। उन्होंने सहर्ष यह कर्तव्य अपना लिया।

". लेकिन काम इतना अधिक था कि अकेला निभा न पाता। इसलिये लाला ज्ञानचन्द एम० ए० प्रोफेसर दयानन्द कालिज जालंधर २४ जून १६२२ को मालाबार पहुंच गये।

प्रोफेसर ज्ञानचन्द जी दो वर्ष से ग्रीष्म-अवकाश के दिनों मे आराम करने की बजाय मद्रास प्रांत मे सेवा-कार्य करते हैं। गत वर्ष आपने वैदिक धर्म और हिन्दी-प्रचार मे समय बिताया। इस वर्ष मालाबार के अकाल-पीड़ित क्षेत्रों में सहायता कार्य और सामाजिक सेवा मे अपना समय लगाया। उनमे प्रचार-भावना बहुत है और वह हर तरह से सेवा-कार्य करने के लिये तत्पर रहते हैं। महता सावनमल और प्रोफेसर ज्ञानचन्द ने मिलकर अकाल पीड़ित क्षेत्रों मे पांच सहायता-केन्द्र स्थापित किये और हज़ारों पीड़ितों ने लाभ उठाया।"

१६२४

कोहाट सीमाप्रांत का एक महत्त्व-पूर्ण नगर है। साधारण-सी बात पर आस-पास के पठानों ने स्थानीय हिंदुओं पर आक्रमण कर दिया। दुकाने लूट लीं और उनके मकान जला दिये। तलवारों और बंदूकों से निरपराध निहत्थे लोगों की हत्या करना शुरू कर दी। इस लूट-मार से कोहाट के हिंदु बर्बाद हो गये। लखपति पैसे पैसे के मोहताज हो गये। सहस्रों नर-नारियों ने घर-बार छोड़कर रावलपिंडी, गण्ड, बसाल और दूसरे पड़ोस के नगरों मे आश्रय लिया। सारी परिस्थिति का पूरा अध्ययन करने के लिये महात्माजी ने मुझे वहाँ भेजा। इसके साथ ही सहायता कार्य भी जारी कर दिया। कोहाट मे फिर बसने वाले लोगों को आर्थिक सहायता दी गई, ताकि वह अपना धंधा शुरु कर सकें। इस तरह न केवल आतंकित और सहमे हुए लोगों को ढारस बंधाया गया, अपितु सहस्रों हिंदुओं को अपने पाँव पर खड़ा होने के योग्य भी बनाया गया।

इन्हीं दिनों जिला मुजफ्फर गढ़ मे सिंध की बाढ़ ने तबाही

मचा दी। यहाँ महता सावन मल जी को भेजा गया। डेरा गाज़ी खां और मुज़फ्फर गढ़ के ज़िलों को हर तरह की सहायता पहुंचाई गई। लहैया मे लाला लीला राम जी सहायता कार्य के अध्यक्ष थे। महताजी ने सारे क्षेत्र मे घूम कर विभिन्न स्थानों पर सहायता केन्द्र खोले।

इसी तरह जिला रोहतक मे बाढ़ के कारण जाट, राजपूत और दूसरे किसान बहुत कष्ट मे थे। महात्मा जी ने वहाँ भी सहायता भेजी और आपद्ग्रस्तों मे अनाज कपड़ा और दवाइयाँ बांटी गईं।

१९३२

मालावार और कोहाट की तरह रियासत जम्मू व काश्मीर मे भी साम्प्रदायिक संकीर्णता की आग धधक उठी। रियासत के कई भागों मे लोग मृत्यु, आग और लूट का शिकार होने लगे। महात्मा हंस राज जी ने जम्मू व काश्मीर सहायता कोष खोल दिया। रियासत पुंछ, मीरपुर, कोटली आदि स्थानों पर इस आग ने उग्र रूप धारण किया। इन क्षेत्रों मे मुफ्त लंगर खोले गये। विपदाग्रस्त लोगों को कपड़े, बिस्तर और बर्तन दिये गये।

१९३४

आर्य समाज भवानीपुर, कलकत्ता के वार्षिकोत्सव के सम्बन्ध मे मै कलकत्ते मे था कि लाहौर से महात्मा हंसराज जी का तार मिला कि बिहार मे भूकम्प से बहुत हानि हुई है। पंडित ऋषिराम जी को साथ लेकर तत्काल वहाँ पहुंचे। पंडित ऋषिराम जी, मै और कलकत्ते के प्रसिद्ध मारवाड़ी आर्यसमाजी सेठ दीपचन्द जी पोद्दार के सुपुत्र सेठ आनन्दी लाल जी

पोद्दार कुछ स्वयं-सेवकों को साथ लेकर बड़ी कठिनाई से मुंघेर पहुंचे। शहर खण्डहर बना हुआ था। सब लोग त्रस्त थे। कुछ क्षणों में ही भूकम्प का एक झटका जीते जागते नगरों को कब्रिस्तान बना गया। जिन्दा लोग मकानों के मलवे तले दब गये। जगह जगह पर धरती नीचे धस गई या फट गई। कुंओं और तालाबों का पानी न जाने कहां लोप हो गया। नये स्रोत अपने आप फूट पड़े। जल थल और थल जल हो गया। पीड़ित जनता त्राहि त्राहि पुकार उठी। चारों ओर हाहाकर मच गया।

महात्मा हंसराज के आदेशानुसार आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पंजाब, सिंध, बलोचिस्तान की ओर से सहायता-कार्य आरम्भ कर दिया गया। मेरे अतिरिक्त पंडित ऋषिराम बी० ए०, लाला हरिचन्द कपूर, महाशय वेदप्रकाश, महाशय देवराज बी० ए०, महता सावन मल जी दत्त, दयानन्द कालिज के बीसियों विद्यार्थी और कितने ही आर्य कार्यकर्ता वहां पहुंच गये। एक दर्जन से अधिक स्थानों पर सहायता केन्द्र खोले गये। पांच सौ कुंये साफ करके उनका जल पेय बनाया गया। सैंकड़ों लाशें निकाली गईं और बीसियों सिसकते लोगों को मलबे के नीचे से निकाला गया। चार सौ इक्कीस देहातों में पचास हजार से अधिक नर-नारियों को कपड़े, अन्न और घर-गृहस्थी का दूसरा सामान देकर उनके घर बसा दिये गये। निस्सहाय स्त्रियों के आश्रय के लिये दानापुर, पटना मे एक अबला आश्रम स्थापित किया गया। बिहार-कोष के शेष धन से बिहारी विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां दीगईं।

१९३५

कोयटा के प्रलयंकरी भूकम्प को कौन भूल सकता है।

२७ और २८ मई की बीच की रात को जब सारा शहर निद्रा-देवी की मृदुल गोद मे सो रहा था, एकाएक धरती कॉपी और क्षण भर में एक सुन्दर शहर खण्डहर बन गया। पच्चीस हज़ार से अधिक बूढ़े, बच्चे, स्त्री और पुरुष काल का ग्रास बन गये।

समाचार प्राप्त होते ही महात्माजी ने आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से एक मैडिकल-मिशन डाक्टर आसानंद भूतपूर्व प्रिंसिपल दयानन्द आयुर्वैदिक कालिज लाहौर की अध्यक्षता मे कोयटा की ओर भेज दिया। परन्तु, डाक्टर आसानन्द के अतिरिक्त अन्य सभी को सरकारी कर्मचारियों ने रोहड़ी से ही लौटा दिया। किसी को कोयटा जाने की अनुमति न थी। इधर लाहौर मे महात्माजी ने रायबहादुर डाक्टर महाराज कृष्णकपूर, रायबहादुर लाला मुकद लाल पुरी, बख़्शी टेकचन्द और मुझे बुलाकर एक समिति बना दी, जिस के ज़िम्मे भूकम्प पीड़ितों की सहायता का काम था।

सरकार ने बचे और घायल लोगों को गाड़ियों मे भर कर बाहर भेजना शुरु कर दिया। इन लोगों की सहायता के लिये रोहड़ी, सक्खर, अमृतसर और लाहौर मे सहायता केन्द्र खोले गये। घायलों के उपचार का प्रबन्ध दयानंद आयुर्वैदिक कालिज के हस्पताल मे किया गया। कोयटा से लौटने वाले आपद्-ग्रस्तों के लिये कपड़े, बिस्तर और रहने का प्रबंध किया गया। अमृतसर रेलवे स्टेशन पर बावा प्रद्युम्न सिंह एण्ड सन्ज़ के मालिक श्री बावा महाराज सिंह ने एक बहुत बड़ा कैंप लगा दिया।

भीषण विपत्ति और दारुण दुख के इस अवसर पर भी संकीर्ण लोगों ने अपनी सम्प्रदायिकता न छोड़ी। हिंदु बच्चों को भगाया जाने लगा। उपरोक्त समिति ने इस शरारत को रोका

और बीसियों बच्चों को विधर्मियों के चंगुल से बचाया। इस कार्य मे श्रीमती प्रेमवती थापर, प्रिंसिपल हंसराज महिला कालिज ने बहुत सहायता की। इस सारी सहायता पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने लगभग तीस हज़ार रुपया खर्च किया।

ऐसा था, उस महात्मा का जीवन, जिसने एक एक क्षण परोपकार और पर-दु ख-हरण मे व्यतीत किया। प्रत्येक श्वास के साथ उन्होंने लोक-कल्याण की कामना की। उनका प्रत्येक कर्म औरों की भलाई के लिये था। और इस मे छोटे बडे अपने-पराये का कोई भेद न था। निर्धन विद्यार्थी कभी उनसे निराश नहीं लौटे। कुछ दानी सज्जनों ने महात्माजी को कह रखा था कि आप किसी भी पात्र व्यक्ति की सहायता कर दिया करे।

उपरलिखित केवल वह घटनाये है, जो लोगों ने देखी, जानी अन्यथा कोई दिन भी ऐसा न जाता कि जब महात्मा जी ने किसी दुखी स्त्री व पुरुप का सकट दूर न किया हो। सैकड़ों विधवाओं की उन्होंने टेर सुनी, और उनके जीवन निर्वाह का प्रबंध किया। सहस्रों अनाथ बच्चों का उन्हों ने ठौर-ठिकाना बनाया, उन्हे सुशिक्षा दी।

मानवता, विशेषकर हिंदु जाति पर उन्होंने जो उपकार किये, उनकी गणना नहीं हो सकती। उनका जवीन ही परोपकार का जीवन था।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षा,
परोपकाराय वहन्ति नद्य.।
परोपकाराय दुहन्ति गाव,
परोपकारार्थमिदं शरीरम्।

आयु पर्यंत पराई आग मे जलकर महात्मा हंसराज ने इस का एक ज्वलंत उदाहरण दिया।

८.

सामाजिक संगठन

राष्ट्र निर्माता हंसराज ने राष्ट्र की नीवों की ओर ध्यान दिया। उनका विश्वास था कि जब तक आर्यजाति मे नवजीवन का संचार नही होता, तब तक हिंदुस्तान को आज़ाद कराने की सब चेष्टाये विफल रहेगी। इसलिये कच्ची नींवों पर विशाल महल निर्माण करने की बजाय वह पक्की नीवों पर एक सुदृढ़ मकान बनाना चाहते थे। साम्प्रदायिक एकता के वह समर्थक थे, लेकिन, प्राय: कहते, "पत्थर के साथ बालू के ढेले का मिलाप नही हो सकता। पहले बालू के ढेले को पत्थर बना लो।"

हिंदुत्व और देश प्रेम के बारे में उनके विचार स्पष्ट थे। वह नही समझते थे कि इन दोनों के प्रति उत्कट भक्ति हुये बिना कोई योजना सफल हो सकती है। हिंदुत्व की भावना और देश-प्रेम पैदा करने का पहला साधन, उनके विचार मे, हिंदुओं की एकता, एक-भाव, एक विचार, एक सभ्यता और एक संस्कृति के लिये मर मिटने की प्रबल लालसा है। यह तभी सम्भव है, जब कुरीतियों और कुविचारों का नाश हो। छूत-छात समाप्त हो। ऊँच-नीच का भाव मिट जाय। प्रांतीयता की सीमाये भंग हो जाये। हिंदुओंका सामाजिक सुधार नितांत आवश्यक है। ब्याह-शादियों मे ढेरों खर्च, शरीरिक रूप से सर्वथा दुर्बल, आहार निकृष्ट, व्यायाम और शिल्प-कला के प्रबंध का पूर्णत अभाव—जाति हर तरह से खोखली हो रही थी। महात्मा हंसराज ने इन सब बातों को एक-एक करके पकड़ा और इन उलझनों को सुलझाने लगे।

ब्रह्मचर्य

देश और जाति का उत्थान उसके बच्चों की पौष्टिकता मे निहित है, इसलिये महात्माजी ब्रह्मचर्य-पालन ही सब से पहली आवश्यकता समझते थे। १६१३ मे दयानन्द कालिज का प्रिंसिपल पद त्यागने के बाद आप दयानन्द कालिज कमिटी के प्रधान बनाये गये तो इस सम्बन्ध मे क्रियात्मक पग उठाया और विवाहित लड़कों का स्कूल में प्रवेश बंद कर दिया गया। स्कूल के मुख्याध्यापक श्री बक्षी रामरत्न जी ने इस विषय मे महात्माजी का पूरा साथ दिया। १६१५ मे एक प्रस्ताव द्वारा विवाहित छात्रों को दसवीं श्रेणी से निकाल दिया गया। महात्मा-

जी १६१६ तक दयानन्द कालिज कमिटी के प्रधान रहे। इस अवधि मे ही वह अनेकों छात्रों का ध्यान ब्रह्मचर्य की ओर आकर्षित करने मे सफल हुये। प्रधानपद त्यागने के बाद भी उन्होंने इस सुकार्य को अपने हाथ से नही छोड़ा। १६२६ मे उन्होंने कालिज कमिटी को इस बात पर सहमत कर लिया कि एफ० ए० मे विवाहित लड़कों का प्रवेश बन्द कर दिया जाय। १६२८ मे इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार हो गया। भारत भर मे तब यही एक संस्था थी, जिस मे एफ० ए० तक केवल अविवाहित छात्र ही शिक्षा पा सकते थे। इस तरह महात्मा जी ने कम से कम अठारह-बीस बरस तक तो ब्रह्मचारी रहने की प्रथा डाल दी।

छूतछात

महात्माजी इस बात पर निश्चित थे कि अछूत कहलाने वाले करोड़ों भारतीयों को हिंदुओं मे दूध और पानी की तरह मिलना ही होगा। इस संबंध मे कुल भेद-भाव हमे मिटाने ही होंगे। महात्माजी केवल सोचते न थे, करते भी थे। दयानन्द स्कूल और कालिज के द्वार सब वर्णों के लिये खोल दिये। इसमे उन्हे कठिनाइयों का भी सामना हुआ। १६२६ मे जब एक चमार विद्यार्थी को दयानन्द कालिज छात्रालय मे दाखिल किया गया तो ब्राह्मण रसोइए ने उसे भोजन खिलाने से इन्कार कर दिया। कुछ विद्यार्थी भी इस बात पर नाक-भौं सुकेड़ बैठे। महात्माजी के प्रभाव से विद्यार्थी न केवल मान गये, बल्कि हठी रसोइये के विरुद्ध उन्होंने हड़ताल कर दी। छात्रालय मे तब लगभग सात सौ विद्यार्थी थे। विरोधस्वरूप किसी ने भी

भोजन नही खाया। कह दिया, "जब तक चमार विद्यार्थी के साथ बराबरी का व्यवहार नही होता, हम भोजन नही करेंगे।" आखिर ब्राह्मण सोइये को झुकना पड़ा। और सब विद्यार्थियों ने एक ही स्थान पर बैठकर भोजन किया। इस तरह की छूतछात को इसाई भी दूर न कर सके थे। दक्षिण-भारत मे इसाइयों के कालिजों मे छोटी जाति के इसाई लड़कों के लिये अलग किचन बनाने पड़े थे।

मालाबार मे छूत-छात अपने उग्र रूप मे है। १६२२ मे मालाबार के हिंदुओं पर मोपलों ने अत्याचार किये और महात्मा हंसराज जी ने आर्य सेवकों को वहाँ हिंदुओं की सेवा एवं सहायता के लिये भेजा तो, इस तथ्य ने आँखे खोल दी कि हिंदुओं की निर्बलता का केवल-मात्र कारण ऊँच-नीच और भेद-भाव है। अन्यथा, उनकी संख्या ८५ प्रतिशत से अधिक थी। दो हज़ार हिंदुओं को मोपलों ने मौत के घाट उतार दिया था और अढ़ाई हज़ार को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया था। आर्य समाज के सेवकों ने जहाँ सेवा कार्य अपनाया, वहाँ अढ़ाई हज़ार पतितों को उभारने का भी काम शुरू किया। मालाबार के इतिहास मे यह पहली घटना थी। इसके साथ ही छूत-छात को समूल उखेड़ने का प्रचार भी आरंभ हो गया। महात्मा-जी की आज्ञा से अछूत कही जाने वाली जातियों को हिंदुओं मे मिलाने के लिये आर्य-समाजी बना लिया गया, लेकिन, वहाँ के कट्टर-पंथी हिंदुओं ने उनको भी मन्दिरों और सड़कों पर चलने की अनुमति न दी। आर्य समाज के सेवक इस दुर्व्यवहार को सह न सकते थे। उन्होंने अदालत मे अभियोग चलाया और अपना अधिकार प्राप्त किया। कट्टर-पंथियों ने रथ यात्रा की

आड़ मे विशेष दिनों पर उनके लिये सड़के बंद करवाना चाहीं, लेकिन आर्यसमाज के प्रभाव के कारण वे ऐसा भी कर नहीं पाये और १६२७ की रथ-यात्रा की धूमधाम में शुद्ध हुये लोग तथा अछूत सब बेरोक-टोक सड़कों पर चलते रहे।

अछूतोद्धार का कार्य सुचारू-रूप से चलाने के लिये महात्मा हंसराज के सहयोग से लाला देवीचन्द जी एम० ए० ने दयानन्द दलित उद्धार मण्डल की स्थापना की। महाशय जाति की उन्नति के लिये महात्माजी ने महाशय सत्यपाल को नियुक्त किया। १६०५ के भीषण भूकंप के बाद कांगड़ा जिला मे देखा गया कि छूत-छात इस क्षेत्र की अवनति का कारण बन रही है। महात्मा जी ने इस जिले की भी सुध ली और लाला हनुमंत दास एडवोकेट और रायबहादुर बक्षी मोहनलाल जी के द्वारा अछूतों के कष्ट दूर करने का प्रयत्न किया। उनके लिये बावलियाँ और तालाब बनाए गये।

महात्माजी ने एक बात और आँकी कि लोहार, बढ़ई, मोची, धोबी का काम करने वालों को ऊँची जाति के हिंदु घृणा-दृष्टि से देखते है और उन्हे अपने से तुच्छ समझते हैं। इस निकृष्ट भाव को निकालने के लिये उन्हों ने अपने एक निकट संबंधी लाला गुरुदासराम चड्ढा को कहा कि वह कपड़े धोने का काम शुरू करे। लाला गुरुदासराम ने चंगड़ मुहल्ला, लाहौर मे 'चड्ढा लाण्डरी' जारी की और हिंदुओं के लिये एक नया धधा पनप पड़ा। इसी तरह जूतियाँ बेचना घृणित काम समझा जाता था'। इस घृणा को मेटने के लिये महात्माजी ने अपने चचेरे भाई लाला धनीराम जी भल्ला को जूते और बूटों का व्यापार करने की प्रेरणा की और अनारकली में 'हिंदूज़ ओन

बूटशाप' के नाम से दुकान खुलवा दी। इस धंधे की राह हिंदुओं के लिये सर्वथा बन्द थी। महात्माजी की दूरदर्शिता से आज हज़ारों हिंदु इस धंधे से कमा रहे है। दर्ज़ी, लोहार और बढ़ई एवं जिल्द बनाने का काम सिखाने के लिये दयानन्द इंडस्ट्रियल स्कूल स्थापित किया। इस स्कूल की स्थापना से पहले पंजाब भर में एक भी हिंदु दर्ज़ी, एक भी हिंदु बढ़ई, एक भी हिंदु जिल्द-साज़ न था। महात्माजी के इस आन्दोलन ने सैकड़ों हिंदु दर्ज़ी, बढ़ई और जिल्द साज़ पैदा कर दिये। इस आन्दोलन के दो लाभ हुये। एक तो हिंदुओं के लिये नए धंधे निकल आये, दूसरे इन धंधों से घृणा के कारण जो ऊँच-नीच का भेद तथा छूआ-छूत थी, वह कुछ कम होगई।

विधवा विवाह

सामाजिक ढांचे को लड़खड़ाने वाली लाखों नौजवान विधवायें है। महात्माजी ने समाज के इस दुखते अंग को भी छुआ और जब सर गंगाराम ने विधवाओं की सहायता का काम शुरू किया तो उनकी पूरी सहायता की और इस सम्बन्ध मे उनका मार्ग-निदर्शन किया। रियासत नाभा में विधवा-विवाह कानून लागू करवाने मे महात्माजी का विशेष हाथ था।

सुधार योजना

अमृतसर मे अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर १९१९ मे अखिल भारतीय सामाजिक सुधार सम्मेलन भी हुआ। महात्माजी इसके प्रधान निर्वाचित हुये। आपने अपने अभिभाषण में रोग का निदान करते हुये कहा :

"मै नहीं समझता कि आधुनिक हिंदू-समाज अपने संगठन और नियंत्रण के लिये प्रशंसा का पात्र है। हमारी सामाजिक पद्धति बहुत गिर चुकी है और इसकी जड़ों मे घुसी अमर्यादा को हटाये बिना प्राचीन गौरव का उत्थान एवं स्थिरता असंभव है। आज हम अपनी प्राचीन परम्परा और गौरव की रक्षा करने की जुर्रत भी नहीं कर सकते। इन त्रुटियों का कारण हमारा प्राचीन आदर्शो को भूल जाना और समय के संकेतों को न समझना है।"

तब उन्होंने हमारे सामाजिक ढाचे की धधकती बुराइयों के सम्बन्ध मे कहा

"हमारा पहला दोष हमारी गरीबी है। यह विचित्र बात है कि भारत जैसी सर्व-सम्पन्न माँ की गोद मे खेलते हुये हम अत्यन्त निर्धन है। मेरे एक मित्र ने मुझे बताया कि भारत मे पॉव रखते ही उसे लगा, जैसे वह किसी अनाथालय मे आ गया हो। यह सच है। जब हम संसार के अन्य देशों से अपनी तुलना करते है तो, प्रशंसा की एक भी बात नहीं पाते, हम कही उनके माप-दण्ड मे ठहरते ही नही। इसलिये, पहली बात यह अटल निश्चय होना चाहिये कि हमने इस वीभत्स निर्धनता को समूल उखाड़ फैकना है। इसके कई साधन है। हर व्यक्ति गरीबी के विरुद्ध इस संग्राम मे केवल इतना ध्यान रखने से ही भाग ले सकता है कि एक भी पाई जो वह खर्चे, देश के आदमियों के पालन मे ही लगे। स्वदेशी का व्रत इसमे एक हद तक सहायक हो सकता है। हमे इस बात पर भी जोर देना चाहिये कि ब्याह-शादियों के अवसर पर रुपया बर्बाद न हो।

"हमारी निर्बलता का दूसरा कारण हममें ब्रह्मचर्य का अभाव है। बाल-विवाह अभी तक जारी है और ऑकड़े बताते हैं कि पाँच बरस से कम के लड़के लड़कियों का ब्याह होता है। चालीस वर्ष पहले दयानन्द ने समाज की इस कुत्सित कुरीति के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी, उनकी कोशिशों से आज बाल विवाह कम हो गये हैं।

"उपरोक्त दो दोषों के अलावा दो और बुराइयां भी हमारे समाजिक ढांचे को घुन की तरह लगी है। आज के ढर्रे की जात-पात हमारी राह मे भारी बाधा है। लोगों के कर्म और स्वभाव भिन्न है। इस भिन्नता की प्रतिक्रिया उनकी समाजिक स्थिति पर भी झलकती है, जिससे समाज उन्ही आधारों पर बट जाता है। हिंदुओं मे वर्णो की विशेषता जाति बंधनों मे बदल गई है। कुल हिंदुस्तान एक भव्य भवन के अनेकों कटे हुये टुकड़ों-सा दीखता है। मानव शरीर के विभिन्न भागों के इकट्ठे जुड़े होने की कल्पना कीजिए। जब आप ऐसे शरीर मे रक्त का प्रवाह रोक दें, तब जो अवस्था होगी, वही आज हमारी है। यह भेद-भाव तीन तरह से हमें नुकसान पहुचा रहे हैं। उनका आदेश है कि विभिन्न जातियों के लोग इकट्ठे बैठकर न खाये। इसी आदेश की बारीकी से एक ही परिवार के सदस्य परस्पर इतने दूर हो जाते है कि मानों अलग अलग धर्मो के मानने वाले हों। इन्हीं बन्धनों के कारण हिंदुओं ने कई लाभ-प्रद धंधे छोड़ दिये, क्योंकि जाति के कारण वह निंदनीय हैं। यह बन्धन ब्याह के अवसर पर भी नुकसान पहुंचाते हैं। विवाह का क्षेत्र सीमित हो जाता है, जिस मे योग्य वरों और कन्याओं के जोड़े खोजना कठिन हो जाता है। एक

सीमित क्षेत्र मे विवाह होने से हमारा रक्त दोष-पूर्ण हो रहा है और निश्चय ही नई संतान अपने बाप-दादाओं से कमज़ोर होती जा रही है।

"दलित जातियों का प्रश्न भी टेढ़ी समस्या बना हुआ है। हिंदुओं की एक तिहाई आबादी को नागरिकों का जीवन बिताने से रोक दिया गया है। जब तक वे हिंदू है, तब तक न तो हममे मिलजुल सकते है और न ही हमारे कुंओं से पानी ले सकते है।

"हमारी दूसरी दुर्बलता विधवा-समस्या है। उनमे से सहस्रों समाज को कोस रही है, जिन्हे आत्म बलिदान के लिये विवश किया गया है। बहुत ही अच्छा हो, यदि समाज उन्हे पुनर्विवाह की अनुमति दे दे। इसके दो लाभ होंगे। एक, अपनी स्थिति सुधारने के लिये विधवाओं को अपना धर्म न त्यागना पड़ेगा। दूसरे, ऐसे युवक जो विवाह के लिये अन्य धर्मो मे चले जाते है, हम मे ही रहेगे।"

नारी शिक्षा पर बोलते हुये उन्होंने पुरुष और स्त्री के अलग अलग कार्य-क्षेत्रो पर ज़ोर दिया। कहा, "अनिवार्य-रूपेण यह भिन्नता अध्ययन क्षेत्र मे भी भिन्नता की मांग करती है। नारी का अस्तित्व इस संसार को स्वर्ग बनाने के लिये है। यदि उनकी शिक्षा उन्हे अपने घरों को स्वर्ग बनाने मे सहायक नही होती, तो यह अपने आप निंदनीय ठहरती है।

"सौभाग्य से, यहाँ हमे उन कठिनाइयों का सामना नही करना है, जो लड़को के मामले मे हुआ। हम इनके लिये स्वतन्त्र प्रयोग करके स्त्रियों के लिये अपनी यूनिवर्सिटी पनपा सकते है।"

इस अभिभाषण का अन्तिम वाक्य ध्यान देने योग्य है। आपने कहा, "यदि आर्यसमाज सुधार-कार्य मे सफल हो जाय तो हम इस संसार को स्वर्ग बना सकते है।"

फर्वरी १६२३ मे महात्माजी ने हिंदू-समाज के उत्थान के लिये निम्न साधन अपनाने को कहा

१ विभिन्न जातियों के विशेष गुणों को सम्पन्न करने के लिये जातियों का मौलिक सिद्धांत व्यक्ति की योग्यता, कार्य और स्वभाव बनाना।

२ झूठे जाति भेद को उड़ाना और एक ही वर्ण वालों को अलग रखने वाली उप-जातियो के बधन तोड़ डालना।

३ दलित जातियों की उन्नति के लिये उनकी धन से सहायता करना, और धार्मिक आदेश एव शिक्षा देना।

४ हिंदुओं मे एकत्व की यह भावना पैदा करना कि अलग अलग होते हुये भी वह एक ही महान् धर्म के अनुयायी है, और उनको परस्पर सहानुभूतिपूर्ण और दयालु बनाना।

५ हिंदुओं मे वेद-प्रचार करना और उन्हे उनके अध्ययन एव उनकी सत्यता को जीवन मे घटाने की प्रेरणा करना।

६ त्यौहारों का पुनर्संगठन करना कि जिससे वे हिंदू-जीवन के विभिन्न भागों का प्रतिबिब बन सके।

७ हिंदुओं मे साझी प्रार्थना का अभ्यास डालना।

८ हिंदुओं मे से निष्कासन प्रवाह रोकना। हमे इस बात का प्रबध करना होगा कि हज़ारों अनाथ विधवाये, दलित जाति के सदस्य, काम-पीड़ित, पिसे हुए, वहमों और अज्ञान मे फंसे हिंदु इस्लाम या इसाई-धर्म की ओर न चले जाये। धन के निष्कासन से कहीं अधिक ध्यान का अधिकारी यह

आबादी का निष्कासन है ।

६. हिंदुओं को यह अनुभव कराना कि उनका कर्तव्य संसार भर मे अपने धर्म की सत्यता का प्रचार करना और जो भी आए उसका स्वागत करना है, न कि अपने ही धर्म भाइयों के क्षेत्र को सीमित करना ।

शुद्धि

इतिहास—शिक्षक के नाते महात्माजी केवल इतिहास पढ़ाते ही न थे, अपितु पढ़ते भी थे। इतिहास ने उन्हे बताया कि भारत के नव्वे प्रतिशत मुसलमान बलपूर्वक मुसलमान बनाए गए है। उन्हे लौटाना आवश्यक है। जब आर्य समाज ने कर्म-क्षेत्र मे पॉव रखा, तब अस्सी प्रतिशत मुसलमान अपने पहले धर्म का आलिंगन करने के लिए तैयार थे। परंतु, खेद है कि पौराणिक हिंदुओ ने साथ न दिया। बाद मे जब पौराणिक हिंदु कुछ तैयार हुए तो मुसलमानों मे कट्टरता आ गई। इसका कुछ कारण तो अंग्रेज़ों का स्वार्थ था, जो इन्हे एक राजनैतिक शस्त्र के रूप मे बरत रहे थे और कुछ मौलवियों का प्रचार। इन कठिनाइयों के बावजूद मालाबार मे जब आर्यसमाज ने अढ़ाई हज़ार बल पूर्वक मुसलमान हुये हिंदुओं को शुद्ध किया और उनके साथ ही टीपू सुलतान के समय मे मुसलमान हुओं को भी हिंदु धर्म की गोदी मे ला बिठाया, तब देश के अन्य भागों मे भी यह इच्छा प्रबल हो उठी। संयुक्त प्रान्त के चार सौ अठारह देहातों मे मलकाने राजपूत बसते हैं। मुसलमानों के शासन काल मे इन्हे बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया था। वे सब चाहते थे कि उन्हे हिंदु-समाज में ले लिया जाय।

दिसम्बर १६२३ मे आर्य महाराजा हिज़हाइनैस सर नाहरसिंह महाराज के सभापतित्व मे राजपूत उपकारणी सभा ने मलकाने राजपूतों की शुद्धि का प्रस्ताव पास कर दिया। आगरा मे भारतीय हिंदु शुद्धि सभा स्थापित की गई, जिस के प्रधान श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी और उप-प्रधान श्री महात्मा हंसराज जी थे। आर्यसमाज की यह दो महान् विभूतिया मिल कर एक पवित्र ध्येय के लिए काम करने लगी। महात्माजी ने धन के लिए अपील की और निजि पत्र लिखे। धन आने लगा और मलकाना मे शुद्धि का काम शुरू हो गया। मौलवी लोग घबराने लगे। सरकार भी कुछ घबराई। सब से अधिक चिंता कांग्रेस को चिमट गई। शोर मच गया कि हिंदु-मुस्लिम एकता भग हो जायगी। महात्माजी ने इसका उपयुक्त और बहुत ही सुन्दर उत्तर फर्वरी १६२३ मे 'आर्यगज़ट' के एक अक मे दिया।

हिंदु मुस्लिम संगठन के नाम पर, अंततोगत्वा, राजनैतिक नेताओं की एक सभा हुई और निश्चय हुआ कि श्री चितरंजनदास पडित मोतीलाल नेहरू, श्रीमती सरोजिनी नायडू, मौलाना अबुलकलाम आज़ाद स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ इस इलाके का दौरा करके पता करे कि मलकाने अपनी इच्छा से हिंदु हो रहे हैं, अथवा बलपूर्वक। इस समिति को जब मलकानों की हार्दिक इच्छा का पता लगा तो उसने निर्णय किया कि मलकानों को हिंदु धर्म अपनाने का अधिकार है। परन्तु, समिति ने स्वामी श्रद्धानन्द जी को, जो उन दिनो राजनैतिक नेता भी थे, शुद्धि का काम करने से रोक दिया।

कार्य-सम्पन्न करने के लिये महात्माजी आगरा पहुंच चुके

थे। आर्य-हिंदू नेताओं की सभा में उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द से प्रभाव-युक्त एवं मार्मिक शब्दों मे अपील की कि वह इस महत्वपूर्ण कार्य से अलग न हों। निश्चय ही स्वामी श्रद्धानन्द एक राजनैतिक नेता हैं, परन्तु, जब मुसलमान राजनैतिक नेता अपने धर्म-प्रचार मे संलग्न है, तब स्वामी जी ही क्यों रुके ? उपरोक्त समिति ने एक और सलाह भी दी थी कि शुद्धि का काम एक वर्ष तक स्थगित कर दिया जाय। यह सुझाव मानने से इन्कार कर दिया गया और स्वामी श्रद्धानन्द जी ने घोषणा की कि वह शुद्धि का कार्य जारी रखेंगे।

अपने कार्यकर्त्ताओं को आगरा, मथुरा, काशी आदि स्थानों पर तैनात कर महात्माजी आवश्यक कार्यवश लाहौर पलट आए। परन्तु अगले ही महीने, अप्रैल १६२६ मे फिर आगरे पहुच गए और काम शुरू कर दिया। दयानन्द ब्रह्ममहाविद्यालय के छात्रों ने अपने आचार्य पंडित विश्वबन्धु की देख-रेख मे अनथक परिश्रम किया। पंडित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, कैप्टेन अमरनाथ बाली एम० ए०, पंडित मस्तानचन्द जी तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं ने सेवा और लग्न का आदर्श स्थापित कर दिया। स्थानीय कार्यकर्त्ताओं मे कुंवर माधोसिंह, बाबू नाथमल, लाला शालिगराम आदि के नाम उल्लेखनीय है।

शुद्धि का काम इतना सहल न था, जितना कि समझा जाता था। जात-पात की बांट ने हिंदुओं को सर्वथा बखेर रखा है। यह बिखरे कांटे मलकानों की शुद्धि की राह पर चलने वालों के पॉव छीलने लगे। महात्मा हंसराज ने बुद्धिमत्ता से काम लेते हुए एक ओर हिंदुओं को समझाया कि यह मलकाने तुम्हारे ही अंग है। इन्हें अपने में मिला लो।

और दूसरी ओर मलकानों को कहा कि यदि किसी बिरादरी के राजपूत तुम्हे अपने में शामिल न करे, तो उनकी परवाह मत करो। साधारण हिंदुओं की तरह रहो। बात तो समझा दी गई, लेकिन शुद्धि कैसे हो ?

सनातन धर्म के पास भी कोई एक निश्चित आदेश नहीं है। इस समस्या को सुलझाने के लिए ३०, ३१ मई १९२३ को राजपूतों का एक विराट् सम्मेलन वृन्दाबन मे हुआ। इतना महान् सम्मेलन इससे पहले राजपूतों का कभी न हुआ था। राजे, महाराजे, जागीरदार, ज़िमींदार और राजपूतों की हर जाति के प्रतिनिधि इस मे शामिल हुए। सम्मेलन का सारा बोझ महात्माजी के कंधों पर था। दस हजार दर्शकों के लिए मण्डप महात्माजी ने अपने ही कार्यकर्त्ताओं से तैयार करवाया। सम्मेलन के प्रधान महाराजा सर नाहर सिंह के स्वागत का भी प्रबन्ध किया। २९ मई को कुछ सौ प्रमुख राजपूतों की सभा हुई, जिस मे तय पाया कि मलकानों को शुद्ध करके उनसे 'हुक्के' का सम्बन्ध जोड़ लिया जाय। ३० मई को खुला अधिवेशन आरम्भ हुआ। जब प्रधान महोदय ने मण्डप मे प्रवेश किया तो वातावरण 'महाराज प्रताप की जय' से गूंज उठा। स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा हंसराज जी और पंडित गिरधर जी शर्मा पुरोहित थे। सम्मेलन प्रार्थना से आरम्भ हुआ प्रार्थना करवाने वाले एक सनातनधर्मी सज्जन थे। प्रधान के भाषण के बाद निश्चय हुआ कि मलकानों को शुद्ध कर लिया जाय और अगले ही दिन एक सहभोज हो, जिस मे शुद्ध मलकाने भी सम्मिलित हों। और जो सहभोज हुआ, वह एक अद्वितीय दृश्य था। प्राचीन काल की आर्य-संस्कृति फिर

जाग उठी। अपने पराये को भूल कर लोगों ने प्यार से एक दूसरे के साथ बैठकर भोजन किया।

इसी तरह मैनपुरी मे भी सम्मेलन हुआ। शुद्धि का तीव्र प्रचार होने लगा। मलकानों के गॉव के बाद गॉव शुद्ध होने लगे। महात्मा हंसराज शुद्धि सस्कारों मे स्वयं शामिल होते। कई बार बहुत अड़चनों का सामना करना पड़ता। एक बार जिला एटा के अमर सिंह कागजा गॉव मे जब महात्माजी पहुंचे, तो अचानक मलकानों ने कह दिया कि हम तो तब शुद्ध होंगे जब हमारी अपनी बिरादरी हमे अपना ले। शुद्धि की तैयारी पूरी थी। राजपूत भी मलकानों को शुद्ध करना चाहते थे, परन्तु, अपनी बिरादरी मे मिलाने पर आपत्ति करते। प्रात. दस बजे से सायं तीन बजे तक यही झगड़ा चलता रहा। वहॉ पुलिस भी थी और मुसलमान मौलवी भी। उधर मुसलमान मलकानों को उकसाते थे और इधर कुछ हिंदु राजपूतों को बहकाते थे कि तुम मलकानों को शुद्ध नहीं कर रहे, अपितु स्वयं मुसलमान हो रहे हो। तीन बजे दौलत सिंह नामक एक राजपूत आगे बढ़ा और उसने छोटे बड़े सब राजपूतों को संबोधन करके कहा, "तुम अपने सम्मेलन के अपने फैसलों के प्रति विद्रोह कर रहे हो। तुम ने शत्रुओं के हाथ मे खेलना शुरु कर दिया है। क्यों अपनी नाक कटवाते हो!"

कभी कभी सीधे-कड़े शब्द बहुत प्रभाव कर जाते हैं। नवयुवक की बात सब के दिलों में उतर गई। राजपूत मलकानों को शुद्ध करके अपनी बिरादरी मे मिलाने के लिए तैयार हो गये। शुद्धि का काम सम्पन्न हो गया; जिसके उपरान्त एक शानदार भोज हुआ। मुसलमान प्रचारक समझ गये कि शुद्धि की

बाढ़ अब रुक नहीं सकती। अब उन्होंने मुसलमानों को उत्तेजित करने का नया हथकण्डा अपनाया।

दो दिलचस्प घटनाये हैं·

महात्माजी एक पूरा गॉव शुद्ध करके रेल द्वारा आगरा पहुंचे। उनके साथ पंडित मस्तानचंद जी बी० ए० थे। महात्माजी स्टेशन से पैदल ही शुद्धि सभा के कार्यालय तक गये। रास्ते मे उन्होंने देखा कि सब बाजार बन्द पड़े है। कहीं-कहीं लोग लाठियॉ लिये खड़े है। पूछने पर पता लगा कि शहर मे यह अफवाह है कि मुसलमान शुद्धि सभा के कार्यालय पर हमला करेंगे और इस आन्दोलन मे काम करने वालों को समाप्त कर देगे। बात सुनकर महात्माजी हंस दिये। पास-पड़ोस वालों ने कहा, "बहुत सावधानी की आवश्यकता है।" परन्तु, महात्माजी उसी तरह निरन्तर अपने कार्य मे संलग्न रहे। संध्या की, और जहॉ प्रतिदिन सोया करते थे, वहीं छत्त पर चले गये। पंडित मस्तानचंद जी ने मजाक से कहा, "यदि आज हमारे कार्यालय पर हमला हुआ और मैं और आप मारे गये, तो लोग कहेगे—महात्माजी शहीद हो गये। उनके साथ एक चपड़ासी भी मारा गया।" महात्माजी ने कहा, "तुम्हारी बात समझ गया हूँ। मै बूढ़ा हो गया हूँ। दुनिया बहुत देख ली। अब मरना ही है। मर गये या किसी ने मार दिया—इस मे कोई अन्तर नहीं। परन्तु, तुम्हारी मृत्यु का शोक अवश्य होगा, क्योंकि, तुम अभी जवान हो। बेचारी ब्राह्मणी विधवा हो जायगी और मुझे ही कोसेगी।"

महात्मा जी मुस्कराने लगे। पंडित मस्तानचंद खिलखिला कर हंस पड़े।

और एक बार की बात है । महात्मा जी शुद्धि करने के लिये गाड़ी से उतरे तो सामने एक पोलीस कांस्टेबल खड़ा था। वह थानेदार का लिखित संदेश लाया था। थानेदार बीमार था और उसने महात्माजी को बुलाया था । महात्माजी गये तो कहने लगा, "यहाँ मुसलमानों के मौलवियों ने जनता को भड़का दिया है । आप यहाँ शुद्धि का काम न करे, अन्यथा, दंगा होने की आशंका है ।" महात्माजी कहने लगे, "मैं कानून विरुद्ध कोई काम नही कर रहा । पतितों को उभारने मे कोई कष्ट आयेगे तो मै सहर्ष सहूंगा। बाकी, शांति रखने का काम आपका है ।"

इतना कह महात्माजी अपने काम पर निकल पड़े।

यह अप्रैल, मई और जून की चिलचिलाती धूप और कड़कती गर्मी के दिन थे। संयुक्त प्रांत के इन प्रदेशों मे तो भीषण गर्मी होती है। महात्माजी शुद्धि कार्य मे इतने तन्मय हो गये कि उन्हे अपने स्वाथ्य का तनिक भी ध्यान न रहा । जलती दोपहरों मे पैदल चल पड़ते और कोसों यात्रा करते। भूख-प्यास की भी परवाह न करते। सत्तू घोलकर पी लेते और अपने काम पर बढ़ते रहते। इस तरह तीन महीनों के निरंतर संघर्ष से महात्माजी १४७ गाँव शुद्ध करने मे सफल हो गये। इसके साथ ही उन्हें स्वास्थ्य और प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने का भी फल मिला उन्हे बुखार आने लगा। परन्तु, महात्माजी ने शुद्धि-कार्य तब भी न छोड़ा । आपकी पीठ पर एक बहुत बड़ा फोड़ा हो गया। मैनपुरी मे डाक्टर ने देखा तो कहा कि "यह तो कार्बंकल है। इसका शीघ्र आपरेशन कराना चाहिये ।"

महात्मा जी लहौर आगये और १२ जुलाई को उनका आपरेशन हुआ । फोड़ा तो ठीक हो गया, परन्तु, कई मास तक दुर्बलता के कारण काम न कर सके ।

६.

महात्माजी और लालाजी

महात्मा हंसराज और पंजाब केसरी लाला लाजपतराय दयानन्द कालिज और आर्यसमाज के दो स्तम्भ थे। इन दोनों मे से एक के भी अभाव मे यह दोनों संस्थायें इतनी उन्नति कर पातीं, इस में संदेह है। और इनकी उन्नति का कारण इन दोनों के एक होकर काम करने मे निहित है। महात्मा हंसराज ने अपने बलिदान से ईंटें प्रदान कीं तो लाला लाजपतराय ने अपने त्याग और परिश्रम से सीमेंट-चूना। इन ईंटों और सीमेंट-चूने से ही यह भव्य भवन तैयार हुये। महात्माजी और लाला

जी आर्य जाति के दो सितारे थे, जो देर तक आकाश मे चमक कर जन साधारण को राह सुझाते रहे, दो सैनिक थे, जो विपत्तिओं और बाधाओं मे जूझते, कंधे से कंधा मिलाये निरतर आगे बढ़ते रहे।

बीकानेर मे अकाल हुआ। दोनों का दिल एक साथ पसीजा। दोनों ने मिलकर जो सेवा कार्य किया, वह आज भी इतिहास के पन्नों पर उभर-उभर आता था। सेवा-क्षेत्र मं ही नहीं, अन्य क्षेत्रों मे भी दोनों साथ-साथ थे। आर्य समाज के उत्सवों पर लाला लाजपतराय की अपीलें पत्थरों को पिघला देतीं। इस आश्चर्य-जनक प्रभाव के पीछे उनका अपना त्याग था। जो कमाते, उस से जो बच पाता, वह आर्यसमाज के अर्पण कर देते। महात्माजी और लाला जी मे अपूर्व मित्रता थी।

१६०७ में लाला जी ने अपना कर्मक्षेत्र विस्तृत कर लिया। वह राजनीति मे भाग लेने लगे। इसी बरस जब किसान आॅदोलन आरंभ हुआ तो लालाजी को देश निर्वासित करके माण्डले मे नजरबन्द कर दिया गया। आर्यसमाज पर सरकार की निगाहे टेढ़ी होगई। अनेकों आर्यसमाजियों को विदेशी शासक के शासन का रसास्वादन करना पड़ा। लालाजी पलट कर आये तो फिर आर्यसमाज के सेवा-कार्य मे जुट गये। लेकिन, उनकी रुचि अब अधिक राजनैतिक कार्यों की ओर ही थी। हौले हौले उनका सारा समय इसी ओर व्यतीत होने लगा। लाला जी चाहते थे कि महात्माजी भी राजनैतिक कामों मे भाग लिया करे, परन्तु महात्माजी कहते, "मैने अपने जीवन में जो मिशन बनाया है; इसे ही पूरा करुंगा।" लाला जी इन अस्थायी आॅदोलनों में भाग लेना आवश्यक समझते थे, महात्मा

जी एक स्थायी चीज़ बनाने के पक्ष मे थे। महात्माजी का निश्चित मत था कि यह आँदोलन एक बाढ़ होते हैं, उनमे एक चट्टान की तरह मज़बूत रहना चाहिए।

लालाजी के एक दूसरा क्षेत्र अपना लेने पर भी महात्मा जी अपने निश्चित पथ पर अग्रसर रहे। लालाजी ने एक बार कहा था, "आर्यसमाज मेरी माँ है, मैने जितनी अच्छी बाते सीखी है, आर्यसमाज से सीखी है।" महात्माजी ने इस माँ की पूजा जारी रखी। दोनों अपने अपने क्षेत्रों मे काम करते रहे।

परंतु, एक बार दोनों मे तीव्र मतभेद हो गया।

१६१६ का मार्शल-ला अपने कटु अनुभव और धधकती स्मृति छोड़ कर गया ही था कि १६२१ मे असहयोग आँदोलन की आग सुलग पड़ी। मार्शल-ला के दिनों मे दयानन्द कालिज के विद्यार्थियों को बहुत कष्ट सहने पड़े थे।

६ सितम्बर १६२० को इंडियन नैश्नल कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन कलकत्ते मे हुआ। लालाजी इसके प्रधान थे। खुले अधिवेशन मे शिक्षा संस्थाओं के वहिष्कार का प्रस्ताव उपस्थित हुआ तो सदस्यों मे बहुत मतभेद पाया गया। लालाजी स्वयं शिक्षा-संस्थाओं के वहिष्कार के पक्षमे न थे। परन्तु, बहुमत से वहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकार हो गया। पंजाब हिंदु शिक्षा संस्थाओं का केन्द्र है। महात्मा गांधी ने सब से पहले इसी प्रांत का दौरा किया। उनके प्रबल और प्रभावोत्पादक भाषण सुनकर वहिष्कार की एक तीव्र लहर चल पड़ी। दयानन्द कालिज के विद्यार्थियों ने भी हड़ताल का निश्चय किया।

महात्मा हंसराज के लिये यह कड़ी परीक्षा का अवसर था।

उनका निश्चित मत था कि यह वहिष्कार न केवल व्यर्थ है, अपितु हानिकर भी। परन्तु, वहिष्कार की आंधी इतनी उग्र थी कि उस मे ठहरना सहल न था। और फिर इसके विरोध का मतलब था, सब मे अप्रिय होना। बहाव के विरुद्ध बढ़ने वाले को अनेकों थपेड़े सहने पड़ते हैं। महात्मा हंसराज जी चाहते तो बहाव के साथ बह जाते, किंतु, उन्होंने एक चट्टान की तरह खड़े रहना उचित समझा और वहिष्कार की बाढ़ में खड़े होकर उन्होंने हड़ताल से एक दिन पहले दयानन्द कालिज के विद्यार्थियों को भाषण दिया। आरंभ मे इसकी तीव्र और कटु आलोचना हुई। परन्तु, महात्माजी के युक्ति-पूर्ण तर्कों से छात्रों के विचार बदल गये और हड़ताल रुक गई।

लाला लाजपत राय पहले तो शिक्षा संस्थाओं के वहिष्कार के विरोधी थे, लेकिन कांग्रेस के निश्चय के बाद उनका मत बदल गया। उन्होंने विद्यार्थियों से अपील की कि कम से कम एक बरस तक वह कालिजों को छोड़कर कांग्रेस में शामिल हो जायें। लाला जी ने अपील मे लिखा कि, "यदि विद्यार्थी शिक्षा-संस्थायें त्याग देंगे तो सरकार को पता लग जायगा कि भारत के लोग स्वराज्य प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय कर चुके है और इसके लिये वह बड़े से बड़ा बलिदान करने को भी तैयार हैं।" लाला जी जानते थे कि उनके आंदोलन की सफलता दयानन्द कालिज की हड़ताल पर निर्भर है। यदि यहाँ वहिष्कार हो गया तो प्रांत भर मे कहीं भी रुक न सकेगा। इसलिये लालाजी ने अपने अखबार 'बन्देमातरम्' के १८ जनवरी १६२१ के अंक मे महात्माजी के नाम एक खुली चिट्ठी लिखी

"प्यारे भाई,

"नमस्ते। आप अपने प्रति मेरे प्यार और श्रद्धा को भली भांति जानते है। आप यह भी जानते है कि संस्था की स्थापना, इसे आत्म निर्भर बनाने और विपक्षियों के आक्रमणों से बचाने के लिये मैने कितनी सहायता दी है। क्या मै आपको १८६६ के वह शब्द याद कराऊँ, जो आपने और स्वर्गीय लाला लालचन्द जी ने मेरे सम्बन्ध मे प्रयोग किये थे, जब कि कालिज कठिनाइयों मे से गुजर रहा था और मै मृत्यु शैया पर था। यह शब्द मेरे ठीक होने पर मुझे बताये गये। तब से १६०७ तक और बाद मे १६१० तक मैने अपने जीवन का एक बड़ा भाग दयानन्द कालिज की सेवा मे लगा दिया। इस आधार पर यदि मै कहूँ कि दयानन्द कालिज के भविष्य के लिये कोई योजना रखने का मेरा अधिकार है, तो अनुचित न होगा।

"आप भूले न होंगे कि सस्था के संस्थापकों की यह प्रबल इच्छा थी कि इसे सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त रखा जाय और सरकारी यूनिवर्सिटी से स्वतन्त्र इसे दयानन्द यूनिवर्सिटी मे बदल दिया जाय। पंजाब शिक्षा विभाग और हमारे मध्य जो संग्राम हुआ था, हमे अपने आधीन करने के लिये पञ्जाब शिक्षा विभाग के सब प्रयत्नों के बावजूद हम ने सरकारी हस्तक्षेप से बचने के लिये जो साधन बरते थे, वह सब मै आपको याद दिलाना नहीं चाहता। आखिरकार सरकार को सफलता हुई। लाला लालचन्द और लाला द्वारिकादास के प्रधानत्व मे हमारे आँदोलन (स्कूल और कालिजों) को जो थोड़ी बहुत आज़ाद

प्राप्त थी, वह अब लोप हो गई है ?[1] और अब डी० ए० वी० स्कूल तथा सेन्ट्रल माडल स्कूल मे कोई विशेष अन्तर नहीं। इसी तरह अब कालिज की नीति यूनिवर्सिटी द्वारा नियंत्रित और प्रभावित होती है। स्कूल और कालिज मे अब ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जा रही हैं, जो स्पष्ट मिथ्या बातों से भरी पड़ी है। कई तो हमारी संस्कृति और राष्ट्रीय सम्मान को ठेस पहुंचाती हैं। यद्यपि पिछले ३० वर्षों मे दयानन्द कालिज ने पञ्जाब में शिक्षा प्रसार का बहुत कार्य किया है, तथापि इसमे सन्देह है कि इससे हमारे राजनैतिक स्वतन्त्रता के संग्राम को कोई सहायता मिली है। मेरा विचार है कि यूनिवर्सिटी और सरकार की कृपा प्राप्त करने के लिये हमने अपने कई सिद्धांत त्याग दिये है और इस तरह स्वामी जी के ध्येय की हत्या करदी है। आपके अद्वितीय बलिदानों के लिये हमारा प्रांत आपका अतीव आभारी है। मुझे यह कहने मे तनिक भी झिझक नहीं है कि अपने जीवन मे आपने कभी भी अधिकारियों की कृपा प्राप्त करने के लिये उनकी चापलूसी नही की और न ही आपने कभी अपने लिये पद अथवा सम्मान पाने की कोशिश की। लेकिन, यह भी सत्य है कि १९०७[2] के बाद आपने

---

१ यह घटना १९०७ की है और लाला लालचन्द १९१२ तक कालिज कमिटी के प्रधान रहे। लाला लालचन्द से १९१२ तक लाला जी की घनिष्ट मित्रता रही। तब परिवर्तन कैसे हुआ, यह समझ में नहीं आता।

२ लाला जी जिस नीति-परिवर्तन की ओर संकेत करते है, उसमें महात्मा हंसराज का कितना हाथ हो सकता है, यह इन तथ्यों से जाना जा सकता है। १९०७ तक लाला लाजपतराय कालिज कमिटी के सदस्य और १९०६ तक इसके उपप्रधान रहे। कमिटी के प्रधान लाला जी के

दूसरों के लिये • कालिज की नीति इतनी बदल दी कि अब उसके कुप्रभाव हर कोई देख सकता है। आपने जो कुछ भी किया सद्भावना से किया और कालिज तथा समाज के हित के लिये। लेकिन, फल उलटा हुआ—समाज और कालिज अपने आदर्श पर स्थिर न रहे और न सरकार ही खुश हुई। आप दोनों ओर से घाटे में रहे।

"अब, कुछ बरसों से देश में नई भावना जगी है। स्वामी दयानन्द ने जिन सिद्धांतों की घोषणा की थी, और आर्यसमाज के नेताओं ने जो नवयुवकों के मस्तिष्क पर अंकित कर दिये थे, आज हर ओर सर्वप्रिय हो रहे हैं। महात्मा जी के आगमन से बहुत पहले आर्यसमाजियों ने स्वदेशी और असहयोग की शिक्षा स्वामी जी से ली थी। मैं जानता हूँ, यह कह कर मैं आपका गलत प्रतिनिधित्व नहीं करता कि बरसों तक आप भी इन्हीं आदर्शों का प्रचार करते रहे हैं। मुझे विश्वास है, आज भी आप इन आदर्शों में विश्वास रखते हैं। इन हालात में क्या आपसे अपील करूँ कि या तो आप खुले तौर से अपने आदर्श परिवर्तन की घोषणा करें, अन्यथा उन आदर्शों को निभाते हुये और जनता की आवाज सुनते हुये दयानन्द कालिज को यूनिवर्सिटी के नियत्रण से मुक्त कर इसे स्वतन्त्र दयानन्द यूनिवर्सिटी में बदलने की घोषणा करें। आपके और कालिज के लिये यह एक स्वर्ण अवसर है, इसका लाभ उठाना चाहिये। यदि आपको फीसों की आय कम होने से स्टाफ कम करने का भय हो तो मैं निम्न आश्वासन देता हूँ :

प्रशंसापात्र लाला लालचन्द थे और बख्शी टेकचन्द जी मन्त्री। महात्माजी तो केवल प्रिंसिपल थे। तब वह कैसे नीति परिवर्तन कर सकते थे?

"क. गत दो वर्षो की औसत आय से जितनी कम फ़ीसे होंगी, वह मैं पूरी कर दूंगा।

"ख आपको स्टाफ का एक भी सदस्य हटाने की आवश्यकता नहीं, यदि छात्रों की संख्या कम हो जाय तो आप उन्हें अपना समय अध्ययन और अन्वेषण मे लगाने के लिये कहें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि दो वर्ष मे आपकी राष्ट्रीय यूनिवर्सिटी की अवस्था सुदृढ़ और निरापद हो जायगी।

"ग जिस दिन आपकी कालिज कमिटी यूनिवर्सिटी से संबंध तोड़ने का प्रस्ताव करेगी, उस दिन से एक सप्ताह मे मैं आपके बैंक-हिसाब मे ५०,००० रुपया जमा करा दूंगा। इससे आप आगामी दो वर्षो का अनुमानित घाटा पूरा कर सकेंगे और आपको कोरे शब्दों पर भरोसा करने की आवश्यता न रहेगी। यदि इस रुपये से दो बरसों का घाटा पूरा न हो तो शेष रुपया भी जल्दी ही इकट्ठा कर दूंगा। आपको और आपके साथियों को आय कम होने की आशंका न करनी चाहिये। मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे सुझाव को कालिज कमिटी के सामने रखें और दो सप्ताह में मुझे निश्चय से सूचित करे ताकि मैं दयानन्द कालिज के प्रति अपने दृष्टिकोण को सदा के लिये स्थापित कर लूं

लाजपत राय"

महात्मा हंसराज उन दिनों लाहौर मे न थे। लौट कर जब उन्होंने 'बन्देमातरम' मे यह खुली चिट्ठी देखी तो तत्काल लाला जी को लिखा :

"मेरे बहुत प्यारे भाई,

"नमस्ते। पिछले सनीचर अंबाले से लौटा तो पता लगा कि

आपने मेरे नाम खुली चिट्ठी लिखी है। मैंने अपने से पूछा, 'मुझे अख़बार द्वारा संबोधन करने की आपको क्या आवश्यकता थी, जब कि मेरा घर आपके घर के इतने समीप है और फिर जब कभी आपने मिलने की इच्छा प्रकट की, मैं आपके घर हाज़िर हुआ ?'

'रविवार को मैंने वह लेख पढ़ा। पहले मैंने सोचा कि मैं आप से मिलूँ और सारी बात निजि रूप से करूँ। लेकिन, मुझे खटका हुआ कि जन-साधारण इसका उलटा अर्थ न ले लें कि मैंने आपके ख़त का उत्तर देने की भी परवाह नही की। अपनी इच्छा के विपरीत यह सार्वजनिक उत्तर देने के लिये मै विवश हूँ।

"मैंने एक और बात भी सोची। यह खत लिखते हुये आपने दयानन्द कालिज के संबंध मे मेरी गत दस वर्षों की स्थिति को ध्यान मे नही रखा। यद्यपि कालिज के विद्यार्थी मुझे अपने बेटों से भी अधिक प्यारे है, तथापि कालिज के प्रिंसिपल-पद से रिटायर होने के बाद प्रिंसिपल साईंदास की प्रबल इच्छा के बिना कालिज के और विशेष कर विद्यार्थियों के मामले मे दख़ल न देने का मैंने निश्चय किया है। लाला साईं दास जानते हैं कि अपने निश्चय पर पक्का रहा हूँ। जब मैंने कालिज कमिटी के प्रधानपद से त्याग पत्र दिया, तब मैंने कालिज कमिटी, स्कूल या कालिज की उपसमिति मे कोई भी भाग न लेने का निश्चय किया, जब तक कि लाला दुर्गादास या बक्षी टेकचंद परामर्श अथवा कोरम पूरा करने के लिये मुझे विशेष रूप से न बुलावें। अपने इन निश्चय से भी मैं हटा नहीं हूँ। इस निश्चय का आधार मेरी यह दृढ़ मानता है कि नये युवक तब तक अपना काम

पूरी तरह नहीं कर सकते कि जब तक बड़े-बूढ़े उन्हे कार्य की पूर्ण स्वतन्त्रता नही देते, चाहे इसमें कुछ हानि ही हो।

"शायद आप को मेरे इस निश्चय का पता नहीं, अन्यथा आप मुझे खुली चिट्ठी लिखने का कष्ट न करते। इस हालत मे मैं दो सप्ताह में आप को कालिज कमिटी के निश्चय से सूचित करने की ज़िम्मेवारी नहीं ले सकता।

"संस्था की आपने जो सेवाये की है, उनके आधार पर कालिज के नेतृत्व और नेक मशविरे का आप का अधिकार मैं मानता हूँ। आप की सेवायें बहुत ऊँचे दर्जे की थीं और मैं यदि भूल नहीं करता तो मै आपका आपसे अधिक आदर और सम्मान करता हूँ।"

"लेकिन, मै आपको या अपने को दयानन्द कालिज का संस्थापक नही समझता। इस की संस्थापक आर्यसमाज और उसे सक्रिय बनाने वाली उसकी भावना है। कालिज किसी व्यक्ति विशेष के प्रयत्नों का फल नही, बल्कि आर्यसमाज की साझी शक्ति का।

"कालिज स्थापित करने का विचार १८८४ मे स्वर्गीय लाला साईंदास और स्वर्गीय लाला लालचन्द ने आर्य समाजियों के सामने तब रखा, जब हम दोनों विद्यार्थी थे। जून १८८६ से पहले उन्होंने इसके नियम और उपनियम बना दिये थे, जब कि आप या मै कुछ भी सहायता देने के योग्य न थे। इस मसविदे मे कालिज के जो उद्देश्य अंकित हैं, यह उन्हीं के परिश्रम का फल है। आप उन उद्देश्यों को भली भांति जानते हैं। हिन्दी को सर्वप्रिय बनाना और संस्कृत पढ़ाना, विज्ञान और अंग्रेज़ी साहित्य के प्रचार के साथ साथ कला-विद्या का प्रसार

करना। १८८६ मे जब मैं दयानन्द स्कूल का मुख्याध्यापक नियुक्त हुआ तो दस श्रेणियों की ज़िम्मेवारी मुझे सौंपी गई और कहा गया कि आगामी मार्च मे होने वाली पंजाब यूनिवर्सिटी की एंट्रेंस परीक्षा के लिये दसवीं श्रेणी के विद्यार्थियों को तैयार करूँ। उस समय हम दोनों मे से कोई भी कालिज कमिटी का सदस्य न था। मार्च १८८७ मे आप सदस्य बने और फ़र्वरी १८८९ मे मुझे यह सम्मान प्राप्त हुआ। लेकिन, इन सब से पहले स्कूल पंजाब यूनिवर्सिटी से संबंधित हो चुका था। यह सब कुछ लाला साईंदास और लाला लालचन्द के जीवन काल मे हुआ। तब आपकी और मेरी आवाज़ इतनी दीन थी कि हम कालिज कमिटी के निश्चयों को प्रभावित करने की आशा भी न कर सकते थे। जब तक आप कालिज से संबन्धित रहे, आपने यूनिवर्सिटी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये सब कुछ किया और स्कूल और कालिज के अच्छे परीक्षा परिणामों पर सदा गर्व अनुभव किया। यह सच है कि लार्ड कर्ज़न की नीति से निजि-संस्थाओं के प्रति सरकार का दृष्टिकोण बदल गया। सरकार की निगाह तिरछी होगई। इसने इस पर अधिक से अधिक बंधन जकड़ने चाहे। आज तक दयानन्द कालिज कमिटी बड़ी दलेरी से इन सब का मुकाबिला करती आ रही है और अभी तक कालिज की नीति मे कोई परिवर्तन नही हुआ। हमारा विश्वास है कि दयानन्द कालिज द्वारा दी गई शिक्षा सब कठिनाइयों और बन्धनों के बावजूद हमारे राष्ट्रीय और धार्मिक पुनरुद्धार के लिये लाभप्रद है।

"आज से पहले कभी किसी ने यह सुझाने की जुर्रत नहीं की कि यूनिवर्सिटी शिक्षा त्याग दी जाय और दयानन्द कालिज

को एक स्वतंत्र राष्ट्रीय यूनिवर्सिटी मे बदल दिया जाय। पहली बार आपने यह सुझाव खुली चिट्ठी मे रखा है। इस पर विचार विनिमय के लिए आप ने केवल एक पखवाड़े का समय दिया है, जो मेरे विचार मे बहुत कम है।

"जहाँ तक मै समझ सका हूँ, आपके सुझाव मे मुझे दो बातें दीखी हैं—राजनैतिक और शैक्षिक। राजनैतिक रूप से आप चाहते है कि एक वर्ष के लिये सब शिक्षा-संस्थायें बन्द कर दी जाये। और विद्यार्थी यह समय राजनैतिक कार्यों मे लगायें। यदि यह योजना अपना ली जाय, तो हमे शिक्षा-संबंधी समस्याओं की एक वर्ष तक परवाह नही करनी चाहिये। एक वर्ष के बाद यदि ब्रिटिश सरकार भारत को पूर्ण उत्तरदायी शासन सौंप दे तो आप सरकारी-सहायता और सरकारी नियन्त्रण को 'बुरे' की बजाय 'अच्छा' समझने लगेंगे और शिक्षा-संबंधी समस्याएं अपने आप सुलझ जायेगी।

"यह प्रश्न कि सब विद्यार्थी पढ़ाई छोड़ कर राजनैतिक काम अपना ले ताकि देश अपने ध्येय की ओर अग्रसर हो सके, विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों के ध्यानपूर्वक विचार करने का है। राजनैतिक नेताओं को भी सोचना होगा कि अठारह-बीस बरस के कच्चे जवानों से राजनैतिक काम हो भी सकेगा! इस प्रश्न पर मैं अपनी कोई सम्मति नही देता।

"राजनैतिक कारणों की उपेक्षा कर यदि सारी समस्या का केवल शैक्षिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाय, तो हमे यह विचार सर्वथा त्यागना पड़ेगा कि वर्तमान शिक्षा संपूर्णतः अथवा आंशिक रूप में हानिकर है। मुझे पता है कि वर्तमान शिक्षा दोष रहित नहीं है। लेकिन, हर पहलू से विचार करने पर मैं

अनुभव करता हूॅ कि यह हानिकर होने की अपेक्षा लाभप्रद अधिक है। इसलिये केवल इस विचार से कि यह यूनिवर्सिटी द्वारा नियंत्रित होती है, अथवा यह दोषरहित नहीं, इसे त्यागने से देश की कोई सेवा न होगी। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम सरकार और यूनिवर्सिटी पर इसे अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के लिये दबाव डाले। हमें स्वतंत्र संस्थाये भी खोलनी चाहिएं, जिससे हम दर्शा सके कि बिल्कुल या एक हद तक यूनिवर्सिटी शिक्षा के दोषों क' दूर किया जा सकता है। इस कारण मै स्वतंत्र संस्थाओं और यूनिवर्सिटियों के पक्ष मे हूॅ। मै समझता हूॅ कि दयानन्द कालिज के इतिहास मे वह बहुत ही शुभ दिन होगा, जब इसे यूनिवर्सिटी मे बदल दिया जायगा। इस उद्देश्य-प्राप्ति के लिये हमारे पास दो मार्ग है।

"पहला मार्ग सरकार से प्रार्थना करने का है कि जिस तरह उसने खालसा कालिज को यूनिवर्सिटी के दर्जे तक बढ़ाने का वचन दिया है या जिस तरह बनारस यूनिवर्सिटी को एक चार्टर देकर इसे प्रथम श्रेणी की शिक्षा-संस्था बनने के योग्य किया है, इसी तरह हमें भी एक आर्य यूनिवर्सिटी की अनुमति दी जाय। इससे हमारी शिक्षा संबन्धी कठिनाइयों की समाप्ति हो जायगी और हमारी यूनिवर्सिटी के ग्रेजूएट-विद्यार्थियों को सरकारी नौकरियो तथा सरकार द्वारा नियंत्रित धंधों से वंचित न रहना पडेगा। निस्संदेह हमारी यूनिवर्सिटी पूर्णरूप से स्वतंत्र नही हो सकती, लेकिन निश्चय ही वर्तमान अवस्था से बहुत उन्नत हो जायगी। इस उद्देश्य के लिये आर्य समाजियों को सरकार तक रसाई करनी चाहिये और हजारों रुपये जुटाने पड़ेगे।

"सरकार की वर्तमान शिक्षा-नीति मेरे विचार का पुष्टी करती है कि यह निरर्थक कार्य न होगा और आर्य समाजी अपने उद्देश्य मे असफल न होंगे। लेकिन, यदि सभी आर्य समाजियों ने सांझे और जोरदार ढग से यह मांग न रखी तो सफलता असंभव होगी।

"दूसरा मार्ग वह है, जो आप ने सुझाया। डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमिटी आप के सुझाव अनुसार यूनिवर्सिटी से सम्बन्ध तोड़ ले और घोषणा कर दे कि अब से दयानन्द कालिज एक स्वतंत्र यूनिवर्सिटी ही होगी। इस मार्ग पर कई आक्षेप हो सकते है। अपने बच्चों की शिक्षा पर जो भारी खर्च करते है, वे उन्हें ऐसे कालिजों मे पढ़ाना पसंद न करेंगे, जहाँ की शिक्षा से वह समुचित जीविका कमा न सके। इस के अलावा एक प्रथम श्रेणी यूनिवर्सिटी की स्थापना के लिये कम से कम १०००००००० रुपये की आवश्यकता है। चिकित्सा-शास्त्र, निर्माण-कलाशास्त्र, व्यापार-शास्त्र, उद्योग शास्त्र, और शिल्प शास्त्र, और विज्ञान की श्रेणियाँ खोलनी होंगी। मुझे आशा नहीं कि आर्य समाजी इतनी धन-राशि शीघ्र जुटा सकेंगे। आपने अतीव कृपा से पहले दो वर्षो के लिये ५०००० रुपये का वचन दिया है, जिस के लिये मैं आपका बहुत आभारी हुँ। लेकिन मै कहूँगा कि इतने बड़े काम के लिये यह बहुत ही कम है, हत्ता कि दो वर्षो बाद इस स्वतंत्र यूनिवर्सिटी को सर्वथा भिन्न रूप ही न देना हो।

"आप सब जानते हैं कि दयानन्द कालिज और इस से संबंधित विभिन्न स्कूल हजारों विद्यार्थियों को हिन्दी संस्कृत और वैदिक धर्म के मौलिक सिद्धान्तों की शिक्षा देते हैं। यदि इस

यह सब संस्थाये बन्द कर दें और एक नई स्थापित कर दें तो, हमारे पास विद्यार्थियों की बिल्कुल सीमित संख्या होगी। इससे समाज के प्रचार कार्य को धक्का लगेगा और जो कुछ भी पंजाब मे आर्य समाज की प्रतिष्ठा और प्रभाव है, कम हो जायगा।

"इन सब बातों को ध्यान मे रखते हुये, मै अनुभव करता हूँ कि दयानंद कालिज कमिटी द्वारा निर्धारित नीति बहुत नीति युक्त है। वर्तमान स्कूल और कालिज कदापि असंबंधित नही होने चाहिये ताकि आर्य समाज के लिये यह क्षेत्र बंद न हो जाय। एक स्वतन्त्र स्कूल खोलने के भी प्रयत्न होने चाहिये। विद्यार्थियों के अविभावको से पूछना चाहिये कि वह अपने बच्चों को इस तरह पढ़ाना पसंद करेंगे ? यदि अभिभावकों की एक अच्छी संख्या तैयार हो तो इस उद्देश्य से एक स्वतन्त्र स्कूल खोल देना चाहिये। कालिज कमिटी ने एक उपसमिति बनादी है, जो अपना काम कर रही है। आप अपने ५०,००० रुपये इस स्कूल के लिये अलग रख सकते हैं।

"कालिज कमिटी ने यह भी निश्चय किया है कि यदि अपने अभिभावकों की अनुमति से कालिज के एक सौ विद्यार्थी प्रिंसिपल को अ-यूनिवर्सिटी कालिज शिक्षा के लिये प्रार्थना करे तो कमिटी उनकी शिक्षा का प्रबंध करेगी। कमिटी की ओर से कोई झिझक अथवा देर नही है, लेकिन, अभी तक विद्यार्थियों की ओर से ही ऐसी कोई मांग नही की गई। यदि आप सौ विद्यार्थियों को अभिभावकों की अनुमति से स्वतन्त्र कालिज मे दाखिल होने की प्रार्थना करने के लिये प्रेरित कर सकें तो मै उनकी शिक्षा का सब प्रबंध

करने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेता हूँ। मुझे आपको याद दिलाने की आवश्यकता नहीं कि दयानद कालिज मे केवल स्कूल और कालिज ही नही है, बल्कि एक आयुर्वैदिक विद्यालय और वैदिक विद्यालय भी है। आयुर्वेदिक कालिज, जहाँ तक कि इसके पाठ्य-क्रम और परीक्षाओं का सबंध है, एक स्वतन्त्र संस्था है। वैदिक कालिज, जोकि एक अर्ध-स्वतन्त्र सस्था है, बड़ी सुविधा से संपूर्णता एक स्वतन्त्र कालिज बनाया जा सकता है। इन दोनों संस्थाओं को पहले दर्जे की स्वतन्त्र संस्था बनाने मे केवल आर्थिक कठिनाइयाँ ही बाधा है। एक स्वतन्त्र कमर्शियल कालिज शीघ्र ही खोला जायगा और उद्योग एवं शिल्प शिक्षा के प्रसार के लिये कमिटी ने इस वर्ष विशेष फण्ड इकट्ठा किया है। निकट भविष्य मे इस बारे मे कुछ निश्चय ही होगा।

"हमारी स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत अथवा राष्ट्रीय, की राह मे सब से बड़ी बाधा यह है कि हम आवश्यकताएं बढ़ाते चले जाते है। आवश्यकताओं की यह वृद्धि, यह अपने आप हो अथवा बाह्य दबाव से, हमे दासता मे जकड़े रखती है। शास्त्रों के अनुसार एक उच्च कुल के ब्रह्मण क लिये अपने राजा से भोजन लेना पाप है, एक सच्चा संन्यासी सांसारिक झंझटों से सर्वथा अनभिज्ञ होता था।

'समाज के ये दो वर्ग सब से अधिक स्वतन्त्र समझे जाते थे। उनका जीवन आत्म त्याग और तप का होता था। जब तक हमारे देश के नेता लोगों को सरल जीवन और उच्च विचार की शिक्षा नही देते, तब तक वे अपने और अपने बच्चों के लिये किसी तरह की भी स्वतन्त्रता प्राप्त कर नही सकते।

यदि यह बात लोगों को समझा दी जाय, तो संभव है कि वे दौलत को अधिक महत्व न देकर अपने बच्चों को स्वतन्त्र राष्ट्रीय संस्थाओं मे शिक्षा के लिये भेजना शुरु कर दें। तब किसी को ऐसी संस्था मे दाखिल होने के लिये प्रेरित करने की आवश्यकता न रहेगी। लेकिन, जबतक लोग संसार की दौलत के पीछे भागते है और ऐश्वर्य की सामग्री के प्रति उनका प्यार बढ़ रहा है, यह मुश्किल है कि वे हमारी बात सुने।

"मेरे विचार मे आपके लिये उत्तम बात माता-पिता को यह प्रेरणा देना होगी कि वे अपने बच्चों के सामने धन-दौलत के आदर्श न रखा करे। इस मे चाहे आपको कितनी ही कम सफलता क्यों मिले, एक नहीं अनेक स्वतन्त्र युनिवर्सिटियां खुल जायँगी। लेकिन, बहुत सम्मान के साथ मै कहना चाहता हूँ, यदि वर्तमान परिस्थितियों मे दयानद कालिज यूनिवर्सिटी से संबंध-विच्छेद करले तो जो छात्र इस समय यहाँ शिक्षा पा रहे हैं, गवर्न्मैंट कालिज या इस्लामिया कालिज मे चले जायेंगे, या बिल्कुल ही पढ़ाई छोड़ देगे और समाज जो धार्मिक शिक्षा उन्हे दे रहा है, उससे वंचित रह जायेगे। यदि आर्य समाज के स्कूल बंद कर दिये जाये, तो भी यही फल प्राप्त होंगे। पिछले तीस वर्षो मे जो थोड़ा बहुत उपयोगी काम आर्य समाज कर पाया है, उस पर पानी फिर जायगा। आपकी आवाज़ गवर्न्मैंट कालिज के छात्रों तक न पहुंचेगी। खालसा और इस्लामिया कालिज के छात्र भी इस आवाज़ से बहरे रहेगे। सब से अधिक दयानंद कालिज के छात्र ही प्रभावित होंगे। यह बहुत ही दुःख की बात होगी, यदि वह

संस्था जिसे बनवाने मे आपने सहायता दी है, आपके ही हाथों से नुकसान उठाये। इससे यह कहीं बेहतर होगा, यदि आप एक स्वतन्त्र संस्था के विकास मे कमिटी की सहायता करें। यदि आप इन प्रयत्नों को अपर्याप्त और असंतोष-जनक समझते है तो, दूसरों को अपने साथ मिलाइये, रुपया जुटाइये, और एक और स्वतन्त्र संस्था स्थापित कर दीजिए।

"यदि आप एक अलग स्वतन्त्र राष्ट्रीय कालिज बनाये, तो मैं आपकी मदद करने और सहयोग देने को तैयार हूँ। यदि आप अपने प्रयत्नों मे सफल हों तो, न केवल आप एक स्वतन्त्र संस्था बना लेगे अपितु स्वतन्त्र शिक्षा जारी कर इसे सर्वप्रिय भी कर सकेंगे। दयानंद कालिज और स्कूल की स्थापना से पंजाब मे कई और स्कूल और कालिज खुल गये है। इसी तरह एक स्वतन्त्र संस्था की स्थापना से कई स्वतन्त्र संस्थाये बन जायेगी। यह सब आप पर निर्भर करता है कि आप अपना समय राजनैतिक कार्यो मे लगाना चाहते है अथवा शिक्षा-कार्य भी हाथ मे लेना चाहते है। मै अकेला बिना किसी सहायता के कोई शिक्षा कार्य हाथ मे नही ले सकता, क्योंकि मैं आर्यसमाज की सेवा के लिये आदमी तैयार करना अपना पहला कर्तव्य समझता हूँ।

हंसराज"

भावना के सामने तर्क काम नही करता। लाला जी की मर्मस्पर्शी भावनायुक्त अपीलों और भाषणों का जन-साधारण पर असर हुआ। लाला जी के भाषणों मे जादू होता था। श्रोता मंत्र-मुग्ध हो जाते। विद्यार्थी भी उनके भावना प्रवाह मे बह गये और २२ जनवरी १९२१ को ४३९ विद्यार्थियों ने

दयानन्द कालिज लाहौर के प्रिंसिपल लाला साईंदास जी से प्रार्थना की कि 'शिक्षा संस्थाओं के बहिष्कार' विषय पर लाला लाजपतराय जी का भाषण कराया जाय। उन दिनों सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबंध था। यह असंभव था कि लाला जी का भाषण हो और कालिज मे, आम लोग न पहुंचे। ऐसी अवस्था मे लाला साईंदास ने विद्यार्थियों की प्रार्थना अस्वीकार कर दी। विरोध स्वरूप उन्हों ने हड़ताल कर दी।

दयानन्द कालिज कमिटी के सामने यह प्रश्न था कि लाला लाजपतराय जी की अपील और जनता की मांग स्वीकार कर कालिज बन्द कर दिया जाय अथवा इसके संस्थापकों की प्रबल इच्छा और विद्यार्थियों के भविष्य के हित मे इसे जारी रखा जाय? महात्मा जी से जब सलाह मांगी गई तो उन्हों ने एक बहुत ही सुन्दर सुलभाव सुझाया। उन्होंने कहा, दयानन्द कालिज का बहिष्कार इसलिये किया जा रहा है कि इस का संबन्ध यूनिवर्सिटी से है। यदि विद्यार्थी यूनिवर्सिटी से संबन्धित कालिज मे पढ़ना नहीं चाहते तो कालिज कमिटी एक स्वतंत्र कालिज खोलने को तैयार है। पुरानी संस्था को तोड़ा नहीं जा सकता। यदि नई संस्था की प्रत्येक श्रेणी के लिये कम से कम पचास छात्र हों और उन्हे अपने अभिभावकों की स्वीकृति प्राप्त हो तो केवल डेड़ सौ प्रार्थना पत्र आने पर नया कालिज खोल दिया जायगा। इसमें सब श्रेणियों का प्रबंध होगा। यूनिवर्सिटी से उसका कोई संबन्ध न होगा। जो विद्यार्थी इस कालिज मे शिक्षा पा रहे हैं, वे भी उस कालिज मे आ सकेंगे।

जब यह योजना सामने आई, तो न केवल एक भीषण बाढ़ थम गई, अपितु हजारों विद्यार्थियों का भविष्य भी अंध-

कार मय होने से बच गया। जब शिक्षा बहिष्कार की आंधी थमी और यह उग्र ज्वर उतर गया तो लोग गंभीरता से सोचने लगे। उन्होंने अनुभव किया कि उस समय वे गलत राह पर बढ़ रहे थे।

उग्रवादी निश्चय ही महात्मा जी के इस कार्य को प्रतिक्रियात्मक कहेंगे। महात्मा जी के विरोधियों ने तब यह प्रचार भी किया कि पंजाब मे अवज्ञा भंग आँदोलन की राह मे महात्मा जी एक बड़ी बाधा थे। वह यदि कालिज को राष्ट्रीय बनाकर यूनिवर्सिटी से संबन्ध तोड़ लेते तो, बहिष्कार आँदोलन प्रात भर मे फैल जाता। यह ठीक है। दयानन्द कालिज के आँदोलन का अर्थ है, पंजाब का आँदोलन। लेकिन, महात्मा जी के सामने इतनी ही बात न थी। उनके कंधों पर भारी जिम्मेदारी और बोझ था। हज़ारों विद्यार्थियों का भविष्य निर्माण उनके सुपुर्द था। तनिक भी असावधानी अथवा साधारण-सा भावना प्रवाह हज़ारों नवयुवकों के जीवन मे प्रतिबिंबित होता। कुछ लोग यह भी कहते है कि महात्मा जी ने उस समय हौसले से काम नहीं किया। यदि वह छलांग लगा देते, अवश्य सफलता मिलती। ऐसा कहने वाले यह भूलते हैं कि महात्मा जी गभीर, संयत स्वभाव वाले दूरदर्शी नेता थे। और एक आदमी का सवाल न था। पूरी जाति का सवाल था। दयानन्द कालिज उनकी निजि सम्पत्ति न था। राष्ट्र ने उनके हाथ इसे सौंपा था। एक धरोहर की तरह इस की रक्षा आवश्यक थी।

और उन्होंने नये प्रयोग भी किये। स्वतंत्र-संस्था की सफलता की कितनी संभावना है, इसका प्रयोग करने के लिये उन्होंने दो नई संस्थाओं को जन्म दिया—पहला, दयानन्द अ-यूनिवर्सिटी

स्कूल और दूसरा, महिला महा विद्यालय। पहला तो दयानन्द शिल्पकारी स्कूल मे बदल दिया गया और दूसरा अब 'हसराज महिला कालिज' के नाम से स्त्री शिक्षा का विस्तृत कार्य कर रहा है।

यह नहीं कि महात्माजी इस निश्चय पर सुविधा से पहुंच सके। महात्माजी की उन दिनों की डायरी से पता लगता है कि उन पर कितना दबाव डाला गया। ५ दिसंबर १६२१ को वह लिखते हैं, "डाक्टर निहाल चंद जी ने कहा कि अब मेरे लिये राजनैतिक क्षेत्र मे उतर आना अच्छा है।" उसी बरस तीन दिन बाद ८ दिसंबर को लिखते है, "लाला दुनी चद जी मेरे पास आये और कहने लगे कि अब कालिज और आर्यसमाज को भी सरकार की नीति के विरुद्ध प्रस्ताव अपनाने चाहिये।" और सात दिन बाद १५ दिसबर को लिखते है,' हरिचंद जी ने कहा कि हम सब आप के नेतृत्व की प्रतीक्षा कर रहे है। मैने कहा कि मुझे कानून का कुछ भी ज्ञान नही और इस ओर मे एक नया जीवन आरभ करने के योग्य भी नही हूँ।"

इन्ही दिनों लाला लाजपतराय पकड़ लिये गये। आर्य-समाज को इस घटना से बड़ा खेद हुआ। इसके विरुद्ध रोष भी प्रकट किया गया। कुछ लोगो ने अब फिर महात्मा जी से कहा कि लालाजी के बाद वह राजनैतिक नेतृत्व अपनायें। लेकिन वह अपने निश्चय पर अटल रहे। सन् १६२२ के पहले दिन उन्होंने अपनी डायरी मे लिखा, "कुछ समय मनन मे गुज़रा। सोचता हूँ, महात्मा गांधी के आँदोलन का क्या बनेगा? क्या उनके अनुयायिओं के

बलिदान आग पर जलने वाले पतंगों की तरह हैं? उनकी देशभक्ति प्रशंसनीय है, लेकिन, उन्हें यह पता नहीं कि अभी रचनात्मक कार्य की बहुत आवश्यकता है।"

लाला लाजपतराय से महात्मा जी का मतभेद केवल राजनैतिक विषय पर ही था। इसका उन्हें बहुत ही दुःख भी था। जब लाला जी ने दयानंद कालिज के विरुद्ध आंदोलन किया तो महात्मा जी ने अपनी डायरी मे यह शब्द अंकित किये, "अफ़सोस, हमारा संबंध टूट रहा है।" लेकिन, दोनों ओर सद्भावना और सच्ची लग्न थी। इसलिये, यह भेद-भाव क्षणिक रहा। १६२४ में जब दिल्ली मे मिलाप-सम्मेलन हुआ तो दोनों उस मे एक साथ थे। इस सम्मेलन के संबध में महात्मा जी अपनी डायरी मे लिखते है,"१७ सितंबर १६२७: इस सम्मेलन के कारण हम एक दूसरे के अधिक समीप आ गये है। उनमे हिंदुत्व का भाव बहुत प्रबल हो उठा है, इसलिये वह औरों से अच्छे हैं। यह उन्ही के व्यक्तित्व का प्रभाव था कि राष्ट्रीयता के नाम पर हिंदु-हितों को बलि न दिया गया।"

सर फजलेहुसैन १६२४ मे सरकारी नौकरियों, कौंसिलों, म्युनिसिपल कमिटियों आदि मे सांप्रदायिक अनुपात नियत कराने में सफल हो चुके थे। पहले तो राजनैतिक नेताओं ने इसे बहुत महत्व न दिया, लेकिन, बाद में इसका खतरा आंका। महात्मा जी इस संबंध में लिखते है, "६ दिसंबर १६२४: मैने मुसलमानों की मांगों को सुना। वे चाहते हैं कि महात्मा गांधी उनके हक़ में हो जायें। वे यह भी चाहते हैं कि नौकरियों आदि में जन संख्या का अनुपात क़ायम रखा जाय। पंडित

मालवीय जी ने उन्हें सही उत्तर दिया है। महात्मा गांधी ने कहा कि इस बात का निर्णय करने के लिये किसी विशेष व्यक्ति को नियत किया जाय। लेकिन, मुसलमानों ने यह बात न मानी। हम लाला लाजपत राय जी के स्थान पर आये, जहाँ इस बारे मे विचार करना था। मुझे हिंदुओं की ओर से बोलने के लिये कहा गया और हम सब ने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि मुसलमानों की अनुचित मांगो के सामने न झुकेंगे।"

महात्माजी ने अपने सामने एक लक्ष्य रखा था और वह यह कि आर्यसमाज द्वारा सारे संसार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। जब १६२१ मे कांग्रेस आंदोलन ज़ोरो पर था और जन साधारण बहुत आशावान थे कि एक वर्ष मे ही स्वराज्य मिलने वाला है तो, आर्य समाज पर भी पूरा दबाव डाला गया कि वह भी कांग्रेस मे शामिल हो जाय। लाला जी का यह विचार तो नही था, परन्तु, वह इतना जरूर चाहते थे कि दयानंद कालिज और आर्य समाज कांग्रेस आंदोलन मे पूरा सहयोग दे। इस संबंध मे महात्मा जी अपनी डायरी मे लिखते है,"६ जुलाई १६२१ हमने (लाला जी और महात्माजी ने) राजनीति पर बात-चीत की। मैने कहा कि आर्य समाज का अपना कार्य-क्षेत्र है, जो केवल स्वराज्य मिल जाने पर ही समाप्त नहीं होता। उन्होंने कहा कि आर्य-समाज के तीन पहलू हैं—धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय। इनमे से पहले दो को तो आर्यसमाज अकेला ही निभा सकता है। लेकिन, राष्ट्रीय पहलू की पूर्ति के लिये कांग्रेस के साथ मिलकर ही काम करना चाहिये। मैने कहा कि हिंदुओं

की भलाई इस बात मे है कि राष्ट्रीय कार्य को भी आर्य-समाज ही करे।"

बस दोनों मे इतना ही मतभेद था, अन्यथा महात्मा जी और लाला जी मे अपूर्व घनिष्ठ मित्रता थी। दोनों एक दूसरे के प्रशंसक, समर्थक और सहयोगी थे। इसका प्रमाण उनकी डायरी पर उभरे यह मर्मस्पर्शी शब्द है, "४ नवंबर १६२१ई: अमेरिका से लाला लाजपत राय जी की वापसी से बराबर उनके कल्याण के लिये प्रार्थना करता रहता हूँ।"

१०.

आर्य-कांग्रेस

विगत पन्नों मे फूट के फल का उल्लेख कर चुका हूँ।

१८८५ से १८९३ तक दयानंद कालिज के प्रसार मे समस्त आर्य-भाइयों के सहयोग और परस्पर सहायता से जो उज्ज्वल भविष्य आंका जा रहा था, वह ईर्षा, द्वेष और वैमनस्य से धुंधला पड़ गया। इसकी झांकी आरंभिक अध्यायों मे झलकती है। इससे अधिक खेद की बात क्या होगी कि विश्व भर को वेद का भक्त और आर्य बनाने के दावेदार आपस मे ही उलझ बैठें। आर्यसमाज के इतिहास मे इन घटनाओं को

पढ़ कर माथा शर्म से झुक जाता है।

१८९३ मे आर्य दो नौकाओं मे बट गये थे। तब कितना कीच उछला, यह सब दोहराते लेखनी कांपती है। आज उनका जो जिक्र भी कर पाता हूँ, तो इसलिये कि समय की लहरों ने कई बार दोनों नौकाओं को साथ साथ बहने को बाधित कर दिया। इन उजली घटनाओं के प्रकाश मे काली घटनाये सहन हो जाती हैं।

पहली घटना है, पंडित लेखराम जी का बलिदान।

१८९७ मे किसी पथ-भ्रष्ट ने उनके पेट मे छुरा घोंप दिया और वह सदा की नीद सो गये। श्मशान भूमि मे जब उनकी पवित्र देह चिता पर रखी जाने लगी तो दोनों दलों के आर्य महानुभावों के मन मे एकता का भाव उमड़ आया। चार वर्ष के बिछुड़े भाई मिल गये। महात्मा हंसराज जी ने उस अवसर पर जो दो-चार शब्द कहे, वह सुनने वालों के दिलों मे उतर गये, परन्तु, खेद कि श्मशान भूमि का मिलाप वैराग्य ही सिद्ध हुआ। कुछ ही दिनों बाद नौकायें फिर अलग अलग धाराओं मे बहने लगी।

'गुरुकुल विभाग' पहले केवल प्रचार-कार्य किया करता था। अब उसने शिक्षा-कार्य भी अपना लिया। १९०२ मे गुरुकुल कांगड़ी स्थापित किया गया और तब गुरुकुलों का एक क्रम ही जारी हो गया। बाद मे तो गुरुकुल विभाग की ओर से यूनिवर्सिटी-स्कूल और कालिज भी खुलने लगे। इसी तरह 'कालिज विभाग' का आरभ तो शिक्षा-कार्य से ही हुआ था, परन्तु, इसने भी प्रचार कार्य आरंभ कर दिया। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के द्वारा पंजाब, सीमा प्रान्त,

सिंध, बिलोचिस्तान, जम्मू व काश्मीर, बंगाल, आसाम, मालाबार और अमेरिका तक उसने वैदिक प्रचार का प्रबंध किया।

अलग-अलग काम करते हुये ये दोनों दल समय पर सदा एक हो गये। १९०३ में शिमला मे इसाइयों के चंगुल से एक देवी को बचाने के संबंध मे जब मुकद्दमा चला तो दोनों दलों ने अनुपम सहयोग से काम किया। १९१० मे जब महाराजा पटियाला ने कुछ आर्य समाजियो को एक षड्यन्त्र की लपेट मे ले लिया तो सब ने मिलकर एक दूसरे की पूरी सहायता की। १९२३ में महाशय रामचद्र को कत्ल कर दिया गया। महाशय रामचन्द्र जी जम्मू और काश्मीर मे अछूतोद्धार का कार्य करने के लिये गये थे। तब भी दोनों दलों ने सब भेदभाव मिटा कर अपराधियों को उचित दण्ड दिलवाने का प्रयत्न किया। मलकाना शुद्धि का उल्लेख पिछले पन्नों मे कर चुका हूँ। इस महान् कार्य मे तो अलगाव कही खोजे न मिलता था। महात्मा हंसराज और स्वामी श्रद्धानन्द कंधे से कंधा मिलाये कर्त्तव्य क्षेत्र मे जूझते रहे। मथुरा की दयानन्द शताब्दि और अजमेर की दयानंद निर्वाण अर्द्ध-शताब्दि के अवसर पर फिर दोनों दलों का सहयोग अपूर्व था। और हैदराबाद सत्याग्रह के अवसर पर तो यह बात पूर्णत. सिद्ध हो गई कि दूसरे के मुक़ाबिले मे आर्य सदा एक हैं। दोनो दलों के सांझे प्रयत्नों और बलिदानों से आर्य समाज ने शानदार विजय प्राप्त की और सर्व-साधारण पर आर्य समाज की शक्ति की छाप अमिट हो गई।

ऐसी बातों से उत्साहित होकर महात्मा हंसराज जी ने

एक बार प्रयत्न किया कि दोनों दल स्थायी रूप से एक हो जाये। कहा जाता है कि लगभग सब भेद-भाव मिट चुके थे और मामला निपट चुका था। परन्तु, गुरुकुल विभाग के मुख्य नेता इस बात पर आकर मिलाप की बात को तोड़ बैठे कि महात्मा जी को ऐसे मेज़ पर भोजन खाने मे कोई झिझक नहीं, जहाँ दूसरे लोगों को मांस परोसा गया हो, इसलिये इनके साथ मिलाप नहीं हो सकता। परन्तु, इससे एक्य प्रयत्न समाप्त नही हुये।

मालाबार के बल-पूर्वक मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को जब आर्यसमाज ने लौटा लिया और मलकानों के सैकड़ों गाँव शुद्ध कर लिये तो आर्यसमाज की चारों ओर धाक बैठ गई। इस सफलता से विरोधियों की आँख चुंधिया गई और आर्य-समाज उनकी आँख मे काँटे की तरह खटकने लगा। मुसल-मान तो बहुत ही उत्तेजित हुये। इसाई भी आर्यसमाज के विरोध मे उनके साथ गुट्ट-बन्द हो गये। राजनीतिक और धार्मिक दोनों क्षेत्रों मे आर्यसमाज का विरोध होने लगा। विरोधियों ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की जब्ती की माँग तक करने का दुस्साहस किया। महात्मा जी ने इस विषाक्त प्रचार को रोकने के लिये अपनी लेखनी का आश्रय लिया और 'आर्यगज़ट' मे लेखों द्वारा 'सत्यार्थ प्रकाश' की उपयोगिता एवं आवश्यकता सिद्ध कर दी। यह लिखते हुये कि 'सत्यार्थ प्रकाश' केवल सत्य के प्रकाश के लिये है न कि किसी का दिल दुखाने के लिये, महात्मा जी ने लिखा, "जो लोग स्वामी दयानन्द की आवाज़ को बन्द करने के लिये आवाज़ उठा रहे है, उन्हे याद रखना चाहिये कि यह नीति संसार की उन्नति और लाभ के सर्वथा

विपरीत है।"

सत्यार्थ प्रकाश विरोधी आंदोलन से समस्त आर्य जगत् में एक आग-सी लग गई और एक नियंत्रित-उत्तेजना, एक संयत-क्रोध और संभला-जोश मचलने लगा। उठते तूफ़ान को देखकर सरकार को तो हौसला हुआ नही कि इस अनुचित माग पर विचार करे। इतना असर जरूर हुआ कि सरकार ने कई स्थानों पर आर्यसमाज के जलसों और जलूसों पर पाबन्दी लगा दी। इस तरह प्रचार कार्य मे बाधा होने लगी। उधर मतांध मुसलमानों ने आर्य नेताओं को धमकी-पत्र लिखने शुरू किये और कइयों को कत्ल भी कर दिया। शांतिदेवी की शुद्धि के बाद श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी को, जब कि वे दिल्ली मे बीमार पड़े थे, एक कायर मुसलमान ने पिस्तौल मार दी। यह पराकाष्ठा थी। सारा आर्य जगत विचलित हो उठा और एक सांझी आर्य कांग्रेस का प्रस्ताव हुआ।

आर्य सार्वदेशिक सभा दिल्ली ने १९२७ मे आर्य कांग्रेस की योजना की। ये एक पक्षीय प्रयत्न थे। आर्य पादेशिक सभा सार्वदेशिक सभा से अलग है। परन्तु सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री महात्मा नारायण स्वामी जी [1] की सदा यह इच्छा रही है कि दोनो दल एक हो जाये, इसलिये उन्होंने प्रादेशिक सभा को भी शामिल होने के लिये कहा। अगले महीने आर्य कांग्रेस की स्वागत कारिणी की ओर से बाकायदा निमंत्रण मिला। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा इसे सब दलों का प्रतिनिधि

---

१ तब महात्मा नारायण स्वामी जी ही सार्वदेशिक सभा के प्रधान थे और बहुत बरसों तक रहे। बाद में श्री घनश्याम सिंह गुप्त प्रधान चुने गये।

सम्मेलन बनाना चाहती थी ताकि इस की आवाज़ में पूरी ताकत पैदा हो सके। एक पक्षीय सम्मेलन का वांछित प्रभाव न हो सकता था। सार्वदेशिक सभा ने यह सुझाव एक ढंग से मान लिया और प्रादेशिक सभा ने सहयोग देना स्वीकार कर लिया।

पहले प्रधान-पद के लिये भाई परमानन्द जी का नाम पेश हुआ। वह नहीं माने। तब महात्मा हंसराज जी से प्रार्थना की गई, उन्होंने भी अपनी असमर्थता प्रकट की। परन्तु, स्वागत-कारिणी ने महात्मा जी के असमर्थता प्रकाश पर ध्यान न देते हुये अपने प्रधान श्री पंडित रामचन्द्र जी देहलवी को भेजा। महात्मा जी आर्यसमाज लोहगढ़ अमृतसर के उत्सव पर गये हुये थे। पंडित जी वहीं पहुँचे और उन्होंने महात्मा जी के सामने सारी स्थिति वर्णन की। महात्मा जी ने समय की गंभीरता को पहचाना और इच्छा न होते हुये भी प्रधान-पद स्वीकार कर लिया।

३ नवंबर १९२७ को अन्य प्रतिनिधियों के साथ महात्मा जी दिल्ली पहुंचे। स्टेशन पर उनका शानदार स्वागत हुआ। स्थानीय अधिकारियों ने जलूस निकालने की अनुमति नहीं दी, इसलिये न निकाला गया, यद्यपि कुछ लोग आज्ञाभंग कर के भी निकालना चाहते थे। विषय निर्धारिणी सभा में सरकार की आर्य समाज के प्रति दमन-नीति की तीव्र आलोचना और गर्म बहस हुई। महात्मा जी ने सही शब्दों में तब आर्य जगत का नेतृत्व किया। ४ नवंबर को खुला अधिवेशन शुरु हुआ, मण्डप में पच्चास हज़ार आर्य प्रतिनिधि और जनता उपस्थित थी। वह एक देखने योग्य दृष्य था। इतना उत्साह, इतना जोश आर्य समाज के इतिहास में इससे पहले कभी देखा न

गया था। श्री पंडित मदन मोहन जी मालवीय, स्वर्गीय सेठ जमना लाल बजाज आदि राष्ट्रीय नेता भी सम्मिलित हुये। प्रतिनिधियों मे पंजाब-केशरी लाला लाजपत राय, भाई परमानंद जी, लाला दीवान चंद जी एम० ए०, आचार्य रामदेव, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, रायबहादुर हर विलास शारदा, पंडित घासी राम जी मेरठनिवासी व अन्य सैकड़ों महानुभाव उपस्थित थे। वेद मन्त्रों और वंदेमातरम् गीत से सम्मेलन प्रारंभ हुआ : ओं के झण्डे का गीत भी गाया गया। जब महात्मा हंसराज ने सभापति का आसन ग्रहण किया तो तालियों और जयघोषों से मण्डप गूंज उठा। जयकारों का शब्द आकाश को छूने लगा।

महात्मा जी का अभिभाषण एक ऐतिहासिक महत्व रखता । गभीर अवसर पर उन्होंने जाति का सही नेतृत्व किया और अधिक शब्दाडंबर मे न उलझ कर संक्षिप्त शब्दों मे आर्य समाज की समस्त समस्याओं और उलझनों के सुलझाव सुझा दिये। अभिभाषण के मुख्यांश ये है :

"तप और वेदों के अध्ययन से शक्ति प्राप्त कर स्वामी दयानंद अपनी ध्येय प्राप्ति के लिये चल पड़े और १८७७ में उन्होंने आर्य समाज को वर्तमान रूप दिया।

"आर्य समाज का आधार 'दस नियम' है। इनमे स्वामी जी ने अपने अनुयायियों को समस्त मानवता के उत्थान की प्रेरणा की है। यद्यपि स्वामी दयानंद भारतीय थे और वह भारत को बहुत प्यार करते थे, तथापि बहुत से देशभक्तों से भिन्न वह केवल भारत की उन्नति मे संतुष्ट न थे। वह न केवल कुल मानव जाति का भला चाहते थे, बल्कि संसार के प्राणी मात्र का।

कोई धर्म जिसका संदेश किसी एक जाति अथवा देश तक सीमित है, प्रशंसा योग्य नही है। इस पर ऐसे प्रतिबंध लगाना इसे ऊंचे आदर्शो से गिराना है।

"स्वामी दयानंद की धारणा थी कि सृष्टि के आरंभ मे वेदों द्वारा मानवता को दिया गया संदेश विश्व-भर के लिये है और यह किसी जाति अथवा देश तक सीमित नही। जाति या धर्म के लेशमात्र भेद के बिना समस्त हिंदू प्राकृतिक रूप से इसमे उतने ही सांझीदार थे, जितने कि सूर्य और चॉद मे।

"ऋषि दयानंद का विश्वास था कि सब धर्मो मे जो सचाई है, वह वेदों से ली गई। उनकी धारणा थी कि यदि वह अन्य लोगों को समझा सके कि जिन बातो पर वे विश्वास करते हैं, उनमे से कई मिथ्या है, तो सारे धार्मिक झगड़े निबट जाये।

" इस तरह प्रेरणा पाकर स्वामी दयानंद ने सत्य पर ज़ोर दिया और असत्य को झुटला दिया। उन्होंने कोई नई बात नहीं की कि जिससे कोई बौखला पड़े। प्रत्येक सुधारक,जब कोई भी सुधार कार्य अपनाता है तो, यथा स्थान जहॉ जो उचित हो, निंदा और प्रशंसा करता है।

"जब यज्ञों मे पशु बलि और ऐसी दूसरी प्रथाये चल पड़ी तो बुद्ध को उनके विरुद्ध तीव्र आवाज़ उठानी पड़ी। यह आवाज़ उन ब्राह्मणों के कानों तक भी पहुंचनी ही थी, जो उस समय इन प्रथाओं के रक्षक थे। बुद्ध ने उन्हें भी नही छोड़ा। उन्होंने 'धम्मपद' में उन्हें 'मूर्ख' कहा।

"बाद मे जब बुद्ध-धर्म व्यर्थ विश्वासों और वहमों से भर गया तो शंकराचार्य ने उतनी ही तीव्रता से इस पर आक्रमण किये।

"भारत से बाहर भी इतिहास ऐसी ही घटनाओं को दोहराता है। जब ईसा ने अपना धर्म चलाया तो उसने यहूदियों को अज्ञानता, वहम और बुराइयों मे उलझे देखा। उसने उन्हे गालियां दी और सख्त से सख्त शब्द प्रयोग किये। एक जगह उसने यहूदियों को 'सांपों की सन्तान' कहा है।

"इसी तरह जब हजरत मुहम्मद अरब मे पैदा हुये तो उन्होंने लोगों को और भी हीनावस्था मे देखा। उन्होने उन्हे सुधार कर अपने पक्ष में मिलाने की कोशिश की। हम कुरान मे देखते है कि उन्होंने अपने विरोधियों के लिये जो कि अधिकतर यहूदी या इसाई थे, बहुत ही कठोर शब्द प्रयोग किये है। उन्होंने अपने विरोधियों को 'बेदीन,' 'विश्वासघाती,' 'नारकी,' 'बहु देव पूजी,' 'नमक हराम' आदि कहा।

"बाद मे भी हमे ऐसे सुधारक अधिक नहीं मिलते, जिन्होंने कोमल शब्दों में निंदनीय बातों को खत्म करने की चेष्टा की हो। जब इसाई मत मे बुराइयां घर कर गईं तो लूथर आया और उसने उन्हे बुरी तरह कोसा। उसकी आलोचना कितनी कटु और तीव्र है? रुपयों के लिये जो पादरी 'क्षमा पत्र' बेच रहे थे, लूथर ने उन्हें 'शैतान का झण्डा उठाने वाले' कहा।

"लेकिन, स्वामी दयानंद ने अपना संदेश एक वर्ग तक ही सीमित नहीं रखा। वह एक विश्व-धर्म का प्रचार करने आये थे। इसलिये आवश्यक था कि वह न केवल हिंदू धर्म मे बढ़ते वहमों से निपटे बल्कि अन्य धर्मो मे ऐसी बुराइयों का भी विरोध करे। उनका विश्वास था कि केवल इसी तरह वे सब वैदिक धर्म की ओर आ सकेंगे। यदि एक सुधारक यहूदियों को और दूसरा यहूदियों तथा ईसाइयों को सुधारने

के लिये निकला तो स्वामी दयानन्द सब जातियों और धर्मों को सुधारना चाहते थे। और इस तरह सब को एक झण्डे—वैदिक धर्म—के नीचे इकट्ठा करना चाहते थे। इस महान् कार्य के लिये उन्होंने काम किया और कोई ही कठिनाई होगी, जिस का उन्होंने सामना करके विजय न पाई हो।

"जो ऋषि की आवाज़ को दबाना चाहते हैं, उन्हें समझना चाहिये कि वे संसार की उन्नति मे बाधा बन रहे हैं। यदि बुद्ध, शकराचार्य, ईसा, मुहम्मद और लूथर के विरोधी उन की आवाज़ को सफलता पूर्वक दबा पाते तो संसार आज बहुत अवनत होता। बरसों की धार्मिक लड़ाइयों के बाद योरुप ने सहनशीलता सीखी और समझा कि सत्य का अपना दृष्टिकोण बलपूर्वक दूसरे से मनवाने की नीति कितनी क्रूर है।

"योरुप मे इतना मोल देकर सीखा गया पाठ ब्रिटिश गवर्नमेंट भूल नही सकती। जो ऋषि की आवाज़ को दबाना चाहते हैं, उन्हे याद रखना चाहिये कि अंग्रेज़ धार्मिक सहिष्णुता की नीति नहीं त्यागेंगे। अब यह ब्रिटिश आचार का एक अंग बन गई है।

"सुधारक महानुभाव अपने आसपास बुराइयों को इतनी बुरी तरह अनुभव करते हैं कि उन को मेटने के लिये वे सख्त शब्द प्रयोग करते हैं, जो उन बुराइयों मे फंसे लोगों को चुभते हैं। लेकिन सुधारक केवल देखी हुई बुराई और खोजे हुये असत्य से घृणा करते हैं। उनका रत्ती भर इरादः भी धर्मानुयायियों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाना नहीं होता।

"ऋषि ने जिस सत्य का प्रचार किया, वह सब मनुष्यों के लिये था। उन्होंने घोषणा की कि जो इस सत्य को स्वीकार

करें, उनके लिये वैदिक धम के द्वार खुले होन चाहियें। यह ठीक है कि हिंदुओं ने कुछ देर तक अपने किवाड़ बन्द रखे। उन्हे एक दम खोल देना संभव नहीं। परन्तु हौले हौले आर्य-समाज उन्हें खोलने मे सफ़ल हुआ है। बाहर के लोगों को भीतर लाने का काम बहुत देर से शुरू हो चुका है। स्वभावतः इससे अहिंदुओं को दुख हुआ। उन्होंने ऐसी बात की कभी संभावना न की थी। उनका विश्वास था कि वे वैदिक धर्मानुयायियों को अपने धर्म मे ले आयेगे, और एक दिन ऐसा आयेगा जब कि भारत भर मे एक भी हिंदू खोज निकालना संभव न होगा। आर्यसमाज ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। कोई भी आसानी से समझ सकता है कि आर्यसमाज के इस काम ने उनकी उम्मीदें ख़त्म कर दी। मेरा विचार है कि मुसलमानों की ओर से जो आर्यसमाज का विरोध हो रहा है, वह इसलिये कि वे इस जाति को निगल जाना चाहते थे, अब उनकी यह आशा पूरी होती नज़र नहीं आती। लेकिन मैं कहता हूँ कि शुद्धि के विरुद्ध आवाज उठाकर मुसलमान अपनी दुर्बलता का प्रदर्शन कर रहे है। सदियों तक बे-रोक टोक वे धर्म-परिवर्तन का काम करते रहे है, अब यदि हिंदू अथवा आर्यसमाज अपने द्वार खोल रहा है तो मुसलमानों को बौखला नहीं जाना चाहिये। यह संतोष की बात है कि सब समझदार मुसलमान हिंदुओं का, लोगों को अपने धर्म में लाने का अधिकार मान रहे हैं। कहीं कहीं यह कहा जाता है कि हिंदू इस प्रयोजन के लिये कानून विरुद्ध उपाय बरत रहे हैं। लेकिन, सौभाग्यवश एक भी घटना ऐसी बताई नहीं जा सकती, जिस में कानून भंग की बात गंभीरता से कही अथवा प्रमाणित

की गई हो। उसके विपरीत, कई मुसलमानों की ज्यादतियाँ हर रोज स्पष्टरूप मे देखने मे आती है।

'शुद्धि कार्य मे हमारी अपूर्व सफलता से कुछ मुसलमान भन्ना गये और उन्होंने हिंदुओं को आतंकित करना शुरू किया, जो कि किसी भी धर्म के अनुयायियों को शोभा नही देता। उनमे से कुछ ने इस कार्य मे लगे लोगों पर घातक प्रहार भी किये।

"ऐसी खूनी घटनाओं से कुछ हिंदु भयभीत हो जाते है। हत्यायें, घाव और धमकिया देख कर वह चीख उठते है, अब क्या होगा ? लेकिन, देवियो और सज्जनो ! इस बूढ़ी अवस्था मे भी मुझे इनमे से कोई भी चीज न डरा सकती है और न निराश कर सकती है। जब मै यह बातें देखता हूं, मेरे दिल मे एक ज्वाला प्रज्वलित होती है—अपने धर्म के प्रति प्रेम की ज्वाला। मेरा विश्वास है कि जब शहीदों का खून बहेगा, तो धर्म के अच्छे दिन आयेगे। विभिन्न धर्मो के इतिहास मे भगवान का ऐसा ही नियम देखने को मिलता है।

"क्या यह हिंदुओं के धीरज की, जिन पर ऐसे प्रहार हो रहे है, कडी परीक्षा नही है ? क्या यह गर्व की बात नही है कि इन सब बातों के बावजूद उन्होंने कानून को अपने हाथ मे नही लिया ? यहाँ सहनशीलता मूर्त्तरूप मे हम देखते है। कारण स्पष्ट है। हिंदु इन प्रहारों को अपने धर्म प्रचार का एक साधन नहीं समझते।

"यही नहीं, एक और क्षेत्र मे भी हिंदुओं ने सहनशीलता दिखाई है। कुछ इसाइयों और मुसलमानों ने हिंदुओं के विरुद्ध जो दूषित साहित्य प्रकाशित किया है, धार्मिक इतिहास मे इस

का उदाहरण नहीं मिलता । केवल मुसलमानों की ओर से आर्य समाज के विरुद्ध तीन सौ से अधिक पुस्तकें और पुस्तिकायें प्रकाशित की गई हैं । स्वामी दयानन्द को हर तरह की गालियाँ निकाली गई हैं। लेकिन आर्यसमाज को गर्व है कि उसने न तो कानून को हाथ मे लिया और न सरकार से उनकी जब्ती के लिये कहा । यह ठीक है कि कुछ आर्यसमाजियों ने इन्हे गौण नही समझा और उनके उत्तर मे पुस्तकें लिखी । मै बदले की इस भावना को पसंद नहीं करता । मै समझता हूँ कि मुसलमानों की इन गाली-पूर्ण पुस्तकों का गंभीरता से उत्तर दिया जा सकता है । और यदि यह संभव न हो तो, ऐसे गंदे साहित्य की आयु अधिक नही होती । 'सत्यार्थ प्रकाश' के विरुद्ध ढेरों किताबें लिखी गई हैं, लेकिन उन मे से आज कितनी मौजूद हैं ?

"धार्मिक उपदेष्टाओं को, जिन्होंने विभिन्न समयों और स्थानों पर लोगों को समझाने की चेष्टा की, सदा आदर की दृष्टि से देखना चाहिये, चाहे हम उनके विचारों से सहमत न हों । उनको गालियाँ निकालने का मतलब उनके अनुयायियों के कान सत्य के प्रति बंद कर देना है । यह उस उद्देश्य के ही विपरीत है, जिस से ऐसी पुस्तके लिखी जाती हैं ।

"हिंदू-मुस्लिम एकता मे एक और प्रश्न भी भारी बाधा बन रहा है । मुसलमान अब चाहते है कि मस्जिदों के सामने बाजा न बजे । यह एक नई मांग है । बड़े दु:ख की बात है कि इस मांग के कारण हिंदुओं के धार्मिक जलूसों पर प्रतिबंध लगा दिये गये है । यह मांग नागरिकों के जीवन पर एक भारी पाबन्दी है, जो कोई भी स्वतंत्रता-प्रिय व्यक्ति सहन करने को

तैयार न होगा।

"सदियों से भारत मे मस्जिदे है। इनके सामने बाजे बजते रहे हैं। मुसलमानों के राज मे मस्जिदों के सामने बाजे बंद नहीं हुये। और फिर अनेकों मस्जिदे शोर-शराबे से भरे शहरों में हैं। कल तक मुसलमानों ने कभी नही कहा कि नमाज़ के वक्त बाजा या शोर विघ्न पैदा करता है। यह एक सर्वथा बनावटी मांग है। मै अपने कर्त्तव्य से कोताही करूंगा, यदि यह न कहूँ कि इस विषय मे कई स्थानों पर स्थानीय सरकारे खेदजनक रूप से असावधान और पक्षपाती रही है। शांति-प्रिय नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना सरकार का कर्त्तव्य है। जब उनके अधिकारों पर दस्तंदाज़ी हो रही हो तो दस्तदाज़ी करने वालों को खत्म करना चाहिये, न कि शरारतियों के मिथ्या आंदोलन से प्रभावित होकर शांति प्रिय नागरिकों के जलूसों पर प्रतिबंध लगा देना चाहिये। मेरी सम्मति मे, इस समस्या का एक हल है कि मुसलमान स्थानीय रिवाजों के पाबन्द रहे।

"आर्य समाज, जो संसार मे वैदिक धर्म के प्रचार के लिये स्थापित की गई है, वैदिक धर्म मे घुसी हर बुराई और त्रुटि को दूर करना अपना कर्त्तव्य समझती है, ताकि ये अपना सुधार-कार्य अधिक प्रभाव-युक्त ढंग से कर सके। पहला और सबसे आसान काम यह है कि सब हिंदुओं को वेदों के झण्डे तले इकट्ठा किया जाय। इस उद्देश्य पूर्ति के लिये आर्य समाज संस्थापक ने हमारे सामने एक कार्यक्रम रक्खा, जिस पर चल कर हम आर्य जाति को उठा सकते हैं और संसार भर का सुधार कर सकते हैं। इस कार्य-क्रम को हम राष्ट्र-पुनर्निर्माण कार्य कह सकते हैं।

"इस कार्य-क्रम को क्रियात्मक-रूप देने के लिये हमें तीन तरह से काम करना होगा

१ रिसाव के सब छिद्र बंद करना,

२. व्यक्तियों को शक्ति सम्पन्न करना, और

३. इन व्यक्तियों को संगठित करना।

"· राष्ट्र-पुनर्निर्माण के लिये दूसरी आवश्यक वस्तु व्यक्तिगत सदस्यों को बेहतर बनाना है। इसके लिये प्रत्येक हिंदू का शरीर हृष्ट-पुष्ट होना चाहिये। धनवानों का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने निर्धन भाइयों को बलवान रखने के लिये अखाड़े बनाये। हमें बेकार हिंदुओं को काम पर लगाना चाहिये, जिससे वे न केवल रोजी कमा सकें, बल्कि अपना शरीर भी स्वस्थ रख सकें। बाल-विवाह से हमारा स्वास्थ बहुत गिर गया है। ब्रह्मचर्य के अभाव से हम दुर्बल हो गये हैं। परिणाम स्वरूप न केवल हमारा जन्म-दर घट रहा है, बल्कि हम किसी भी बीमारी के सुविधा से शिकार हो जाते हैं। इसलिये, जरूरी है कि बाल-विवाह एकदम बंद कर दिये जाये। अपना शरीर बनाने के लिये हमे अपने भोजन की ओर ध्यान देना चाहिये और हमे अपनी आय का अधिकांश विभिन्न रीति-रिवाजों पर व्यर्थ गंवाने की बजाय खाने पर खर्च करना चाहिये।

"सुदृढ़ बनने और जीवन को मधुर बनाने केलिये आवश्यक है कि हम सक्रिय आस्तिक बने। ईश्वर विश्वास निश्चित रूप से हमारे जीवन को उन्नत करेगा और हमे सुदृढ़ बनायेगा।

"तीसरी वस्तु इन व्यक्तियों को संगठित करना है। कच्चे धागों से अच्छी तरह बनाया गया रस्सा तूफ़ान में फंसी नौका को लंगर से सुरक्षित बांधे रख सकता है। सुसंगठित सेना के एक हजार

नियत्रित और सुशिक्षित सैनिक हज़ारों अशिक्षित सैनिकों को हरा सकते हैं।

"अफ़गानिस्तान जैसे छोटे देश ने महमूद या शहाबुद्दीन ग़ौरी के नेतृत्व मे कई राजपूत राजाओं की असंगठित सेनाओं को हरा दिया। इंगलैंड जैसे क्षुद्र देश ने अपना सगठन इस तरह किया है कि कोई इसका मुकाबिला कर नही सकता। जापान कभी इतना कमज़ोर था कि चार अमेरिकन जहाज़ों ने जापान सरकार से अपनी शर्तें मनवाली थी। लेकिन, जब जापानी अपने संगठन मे सफल हो गये, तो वे इतने तकड़े हो गये कि उन्हों ने रूस को हरा दिया और अब प्रत्येक व्यक्ति उनकी ओर आदर दृष्टि से देखता है। यह सब सगठन के चमत्कार हैं। हिंदुओं ने इसका मोल नही आँका। यह समझ लेना ज़रूरी है कि एकता अथवा संगठन पर भाषण देने से ही एकता अथवा संगठन हो नहीं जाता। जरूरत इस बात की है कि जन्म के दिन से लेकर गृहस्थ में। पवेश करने तक हमारे माता, पिता, गुरु हमे ऐसी शिक्षा दे कि हमारे स्वभाव मे ही ऐसा नियंत्रण पैदा हो जाय, जिससे आवश्यकता पड़ने पर हम अपने आप एक दूसरे के साथ मिलकर शांति से काम कर सके।

"हम मे सब से बड़ा दोष यह है कि हम मिलकर काम करना नही जानते। जैसा कि ऋग्-वेद मे कहा है, हमारी मुक्ति इकट्ठे बैठने, इकट्ठे बात करने और एक दूसरे को समझने की योग्यता पर निर्भर है। स्वामी दयानंद ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' मे इन मंत्रों पर बहुत ज़ोर दिया है। किसी जाति का जीवन उस की सांझी-शक्ति पर आधारित होता है और जब उसकी संगठन-शक्ति कम हो जाती है तो ईमानदारी ख़त्म हो जाती है और

आत्मसम्मान एवं संस्कृति का ह्रास होता है। वेद कहते है कि हम समाज मे एक यंत्र के अंगों की तरह रहे, लेकिन, हमने इस मंत्र का ग़लत अनुवाद करके ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों का अनंत विभाजन कर दिया है और हिंदु जाति को संसार के मज़ाक का सामान बना दिया है।

"स्वामी दयानंद ने आर्य समाज मे सांझे जीवन को प्रथम स्थान दिया और इसकी सही भावना पर अमल करते हुये आर्य समाज को एक प्रजातंत्रात्मक संस्था बनाया। आर्य समाज के विधान मे प्रत्येक नर और नारी को मत देने का अधिकार प्राप्त है। आर्य समाज के पदाधिकारी सदस्यों द्वारा चुने जाते है। इस तरह हम 'गुरु-डम' और गुलामी की जड़ों पर कुल्हाड़ा चलाते हैं और मिल के काम करना सीखते है।

"हम मे महान काम करने वाले बहुत है, लेकिन ऐसे बहुत कम है जो दूसरे के साथ मिलकर काम कर सके। जैसे ही ये भाग्यशाली कार्यकर्त्ता चले जाते है, उनका काम बंद हो जाता है। हममें से कई सहयोग-भावना को समझते नही। जब कभी हम किसी को विरोधी विचार रखते देखते है, जो कि हम न रखते हों, तो हम उसकी आलोचना का गलत अर्थ लेते है। एक ही बात विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने का मानव का स्वभाव है। सांझा अथवा सहयोगी जीवन उन विचारों के त्याग की मांग नही करता। आवश्यकता इस बात की है कि जब सांझा खतरा सामने हो तो अपने झगड़ों को एक ओर रख कर, अपने व्यक्तिगत मत भेदों को भूलकर साथ-साथ काम किया जाय। महाभारत मे जब युधिष्ठिर ने गंधर्वों के विरुद्ध कौरवों की सहायता करने के लिये अर्जुन को कहा, तो घोषणा की कि 'हम पांच हैं

और कौरव सौ, लेकिन गंधर्वों के मुकाबिले में हम एक सौ पांच हैं।'

"राष्ट्र पुनर्निर्माण का महान् कार्य हमारे सामने है। हमारे विरोधी हमें भटकाने की कोशिश कर रहे हैं। आर्य समाज को दबाने के लिये सरकार की सहायता मांगी जारही है। यदि हमे जीवित रहना है और इसका प्रमाण देना है तो जरूरी है कि हम न केवल अपनी रक्षा के लिये बल्कि अपनी शक्ति के संगठन के लिये साधन अपनाये।

"हर्ष का विषय है कि आर्यसमाज के सिद्धान्त हिंदू विचारों मे गहरे पैठ गये है। धीरे, लेकिन निश्चित रूप से हिंदू अपने कार्य-क्रम की ओर पलट रहे हैं। इस हालत मे आर्यसमाज को स्वामी दयानंद का कार्यक्रम ही सामने रखना शोभा देता है। स्वामी दयानंद के ध्येय ने हिंदु जाति के दिलों मे घर कर लिया है और इसे पूर्ण करना हम सब का कर्त्तव्य है।"

सम्मेलन के तीसरे दिन महात्मा हंसराज जी ने तीन प्रस्ताव रखे, जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुये। पहले प्रस्ताव द्वारा साम्प्रदायिक अनुपात का विरोध करते हुये कहा गया कि यह देश की उन्नति और आज़ादी के राह मे भारी बाधा है। दूसरे प्रस्ताव द्वारा एक निष्पक्ष समिति की मांग की गई जो आपत्तिजनक साहित्य की पड़ताल करे। तीसरे प्रस्ताव द्वारा स्वामी श्रद्धानंद जी का बलिदान-दिवस मनाने का निश्चय किया गया। इनके अतिरिक्त और भी ढेरों महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकार हुये। भाषण-कर्त्ताओं मे पंजाब-केशरी लाला लाजपत राय, भाई परमानंद जी, पंडित मदन मोहन मालवीय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्हों ने आर्य समाज के कार्य की प्रशंसा की और

ार्य समाज की राजनैतिक जागरूकता को संतोष का कारगान बताया। लाला लाजपत राय जी ने आर्य समाज को चेताया कि उतावली मे कोई पग नही उठाना चाहिये, जिससे बाद मे पछताना पड़े।

यह पहला अवसर था कि जब आर्यसमाज ने अपने राज-नैतिक विचारों और भावनाओं का प्रदर्शन किया। यह आर्य कांग्रेस एक ऐतिहासिक सम्मेलन था।

११

प्रादेशिक सभा

दिसम्बर सन् छब्बीस के उनतीसवे दिन महात्मा जी ने आर्यसमाज शिमला के मंत्री महाशय मेहरचंद जी पुरी और कुछ अन्य महानुभावों के एक पत्र के उत्तर मे लिखा :

"मेरी यह इच्छा बहुत देर से है कि मेरे स्थान पर काम करने वाले मेरी आँखों के सामने ही पैदा हों। मेरे जिम्मे कालिज के प्रिंसिपल-पद का भार था, ईश्वर की कृपा से लाला साईदास-जी ने वह संभाल लिया। मुझे इसकी कोई चिंता नहीं। कालिज मैनेजिंग कमिटी के लिये आदमी की आवश्य-

कता है, परन्तु, रायबहादुर लाला दुर्गादास और बक्षी (सर) टेकचन्द जी इस काम को भली भांति कर सकते हैं। उन्होंने इस काम को संभाल भी लिया है। मुझे इस की भी चिंता नही। प्रादेशिक सभा का काम संभालने वाले की मुझे तलाश रही है, परन्तु, अभी तक काम करने वाले और काम को सभालने वाले आदमी मुझे नही मिले। मै यत्न कर रहा हूँ कि ऐसे व्यक्ति मिल जाये। खेद से लिखना पड़ता है कि वर्तमान पीढी मे श्रद्धा, प्रेम, बलिदान और समझ से काम करने वालों की संख्या बहुत ही कम है।

"पिछले वर्ष मैंने सभा मे यह बात रखी थी, और सब ने मिलकर रायसाहब लाला ईश्वर दास जी को चुना था कि वह सभा का काम करे। परन्तु, हमारा दुर्भाग्य कि वह बीमार हो गये और इस योग्य भी न रहे कि सभा का काम कर सके। केवल लाला देवीचन्द जी इस काम के योग्य है। उनको कई बार कहा गया है, परन्तु वह होशियारपुर से निकलना पसंद नही करते।

"अखिल भारतीय नेतृत्व की मै परवाह नही करता, क्योंकि उस मे तत्व का काम बहुत कम होता है। ख्याति के साधन अधिक जुटाये जाते है। हमारा कर्तव्य है कि जो कुछ हम से बन पड़े, हम निष्काम भाव से करे। फल परमात्मा के हाथ मे है। मेरी इच्छा है कि मुझे तनिक अवकाश मिले और मै कुछ लिखने का काम कर सकूं, परन्तु अभी तक परमात्मा ने मेरी इच्छा पूरी नही की।

"आशा है, आप आनन्द पूर्वक होंगे। दूसरे महानुभावों को नमस्ते।

आप का शुभचिंतक—हंसराज।"

महात्माजी ने देश और जाति के जो अनेकों पौदे अपने हाथों से आरोपित किये, उन मे दो मुख्य है दयानन्द कालिज एवं संबंधित सस्थाये और आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि जिस तरह दयानन्द कालिज और दयानन्द कालिज कमिटी ने शिक्षा कार्य सभाल लिया है और उसके द्वारा केवल पंजाब मे ही नही, अपितु सिध, सीमाप्रांत, बिलोचिस्तान संयुक्त प्रात और देश के अन्य प्रान्तो मे आर्य-हिंदु शिक्षा संस्थाओं का जाल तन गया है, इसी तरह आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के द्वारा वेद प्रचार और परोपकार का कार्य भारत के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक ही नहीं, अपितु विदेशों मे भी होने लगे। इसी उद्देश्य से १८६४ मे इस सभा की स्थापना की गई। इससे पहले वेद-प्रचार के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई थी और इसके प्रधान भी महात्मा हंसराज चुने गये थे। परन्तु, दुर्भाग्य से जब आर्य समाज दो दलों मे बंट गया, तो आर्यसमाज अनारकली लाहौर ने प्रचार कार्य अपना लिया। आर्यसमाज अनारकली के पुराने रजिस्टरों मे निम्न प्रस्ताव मिलता है

"२६ जनवरी १८६४ की कार्यवाही। प्रस्ताव सख्या ५२। सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि क्योंकि वर्तमान प्रतिनिधि सभा आर्य-समाज की उन्नति और बेहतरी की बजाय फूट फैला कर आर्य समाज के लिये हानिकारक सिद्ध हो रही है और गत वर्ष प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के पुनर्निर्वाचन और उपदेश व अन्य संबंधित बातों के प्रबंध के बारे मे पदाधिकारियों की ओर से जो कार्यवाही होती रही है, उससे सभा के सुधार अथवा सही होने की कोई आशा नहीं की जा सकती; अपितु, यह सर्वथा

सिद्ध होता है कि प्रतिनिधि सभा के अधिकारों का दुरुपयोग एक पक्ष के रूप मे किया गया है और किया जायेगा। इस कारण प्रतिनिधि सभा अपने वास्तविक उद्देश्य से गिर कर प्रांत की प्रतिनिधि नही, अपितु एक दल की बन गई है और क्योंकि संबध-विच्छेद के सिवा इस हानि को रोकने की कोई और राह नही, इसलिये आर्य समाज लाहौर अपना संबंध वर्तमान प्रतिनिधि सभा से तोडती है। हस्ताक्षर तेजा सिंह (प्रधान), लाजपत राय (मंत्री)"

सबंध-विच्छेद के बाद एक नई प्रतिनिधि सभा को आवश्यकता अनुभव हुई और उसी वर्ष आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पञ्जाब सिंध बलोचिस्तान के नाम से स्थापित की गई। परन्तु, आरभ मे सभा के पास न उपदेशक थे न धन। इस लिये कालिज कमिटी ने ही महता रामचंद्र जी शास्त्री, पंडित जगत सिंह जी तथा कुछ और उपदेशक रखे। आर्य समाज लाहौर ने बाहर की समाजों से सम्पर्क बढ़ाना शुरू किया। इस तरह कुछ काम होने लगा। कई वर्षो तक आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का कार्यालय महात्मा जी की जेब मे ही रहा। परन्तु, जैसे ही महात्मा जी ने प्रिंसिपल का पद त्याग दिया, वैसे ही वह सभा मे जुट गये। १६२१ तक उपदेशकों के वेतन कालिज कमिटी देती रही। १६२२ मे प्रादेशिक सभा ने यह बोझ अपने कंधों पर उठा लिया तब तक सभा के साथ ११२ आर्य समाजे संबंधित थीं और उनकी ओर से लगभग दो हज़ार रुपया सभा को प्राप्त होता था। महात्मा जी के प्रयत्नों से अनेकों नई समाजे स्थापित हुई और संबंधित आर्य समाजों की संख्या अढ़ाई सौ हो गई और वार्षिक आय पांच हज़ार रुपया हो गई। १६२१ मे सभा

के पास केवल १४ उपदेशक और ६ भजनीक थे। अब डेढ़ सौ से अधिक हैं।

सभा का कार्यालय आर्य समाज अनारकली के भवन मे खुल गया। आर्य गज़ट का कार्यालय भी यहीं था। क्लर्क और चपरासी रखे गये। महात्मा जी नियमित रूप से प्रति दिन दफ्तर जाते। पत्र-व्यवहार स्वय देखते। सभा का ढांचा ही बदल गया और यह एक जीवित संस्था बन गई। महता रामचद्र जी शास्त्री, पडित ऋषिराम बी० ए०, पंडित मस्तान चंद बी० ए०, पंडित अमरनाथ जी, महता सावन मल्लजी, ठाकुर अमर सिंह जी, पंडित शिवानद जी, पडित विश्वभर दत्त जी, पंडित बलदेवानंद जी और अन्य उपदेशक उत्साह से काम करने लगे। सभा के कार्य-क्रमानुसार महात्मा जी स्वयं भी उत्सवों पर जाते और प्रचारार्थ दौरा भी करते। वैतनिक उपदेशकों के अतिरिक्त लाला साईं दास एम० ए०, पंडित भगवद्दत्त जी, पंडित दीवान चद शर्मा एम० ए०, पडित विश्वबधु एम० ए०, पडित सन्तराम वैद्यरत्न, पंडित राम गोपाल शास्त्री, पंडित भक्तराम शास्त्री, लाला देवी चंद एम० ए०, लाला गोविन्द राम खन्ना एम० ए० वकील और अनेकों अन्य महानुभाव सभा के आदेशानुसार विभिन्न उत्सवों पर पहुंचने की कृपा करते। मुझे भी महात्मा जी कई उत्सवों पर अपने साथ ले जाते। धीरे धीरे उपदेशकों मे वृद्धि होने लगी। पंडित बुद्धदेव मीरपुरी, महाशय संतराम जी, पडित विश्वनाथ त्यागी एम० ए० और अन्य उपदेशकों ने काम शुरू कर दिया।

अब शास्त्रार्थ होने लगे। महात्मा जी ने स्वयं कई शास्त्रार्थों मे भाग लिया। आर्यसमाज लाहौर की ओर से शास्त्रार्थों का

विशेष प्रबन्ध किया गया । प्रोफेसर देवीदयाल जी, पंडित राजाराम जी और महात्मा जी उनमे भाग लेते । प्रत्येक को प्रश्न करने की अनुमति होती थी । सहनशीलता काफी थी। मुसलमान भी कुरान-शरीफ और हज़रत मुहम्मद के जीवन पर बहस करते । ये लोग तो अब छुई-मुई बने है, अन्यथा तीस-चालीस बरस पहले मुसलमान उलेमा सत्यार्थप्रकाश के चौदहवे समुल्लास पर वाद-विवाद करते । पौराणिक विचार वालों के साथ न केवल मूर्त्ति-पूजा, मृतक-श्राद्ध, ईश्वर-अवतार आदि विषयों पर शास्त्रार्थ होता, अपितु नारी-शिक्षा पर भी। सनातनधर्मी भाई मानते थे कि शूद्र और स्त्री के लिये वेद पढ़ने का निषेध है । आर्यसमाज इसका खण्डन करता था। एक शहर मे जब पुत्री-पाठशाला स्थापित की गई तो सनातनी भाइयों ने तीव्र विरोध किया। इस विषय पर भी शास्त्रार्थ हुआ कि स्त्रियों को पढ़ने का अधिकार है या नही ? अब तो सनातनधर्मी भाई स्वयं पुत्री पाठशालाये स्थापित कर रहे है, परन्तु, आज से पचास बरस पहले ये लड़कियों को पढ़ाना पाप समझते थे। इसी तरह सनातनी भाई अछूतोद्धार के कट्टर विरोधी थे। छूआछूत के विषय पर प्रायः शास्त्रार्थ होते।

महात्मा हंसराज जी ने आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के द्वारा इन सब वहमो को दूर करने का प्रयत्न किया और उन्हे इस काम मे बहुत सफलता मिली। अब कोई भी सनातनधर्मी स्त्रियों को शिक्षा देने, छुआछूत को दूर करने, विधवा विवाह होने के सम्बन्ध मे शास्त्रार्थ नही करता । संसार के साथ चलने के लिये वे इन सब कामों को करना आवश्यक समझते है। आर्य प्रादेशिक सभा के उपदेशकों और प्रचारकों ने हिन्दु

समाज मे क्रान्ति पैदा कर दी है। अब सनातनधर्मी अथवा कोई और कुछ ही माने, परन्तु प्रकट रूप से कोई यह कहने का साहस नही कर सकता कि अछूतों का साथ नही मिलाना चाहिये, अथवा विधवा-विवाह या स्त्री-शिक्षा नही होनी चाहिये।

सभा ने बुरे रीति-रिवाजों को मेटने की भी सफल चेष्टा की। विवाह शादियों के अवसर पर वैश्याओं के नाच की कुप्रथा प्रचलित थी। हजारो रुपया ये वैश्याये ले जाती थीं। इनके अलावा नवयुवकों का जो आचार भ्रष्ट होता था, उसका कोई मोल ही आंका नही जा सकता। आर्य समाज के उपदेशकों, प्रचारकों और कार्यकर्ताओं ने इसके विरुद्ध भीषण आन्दोलन शुरू किया। उनकी कोशिशों से, अन्ततोगत्वा, यह नाच बन्द हो गये। यहाॅ मुझे बहुत खेद के साथ लिखना पड़ता है कि वैश्याओं के नाच तो बन्द हो गये, परन्तु पाश्चात्य सभ्यता के पुजारियो ने इन कुरीतियो को एक नया रूप दे दिया। पहले तो वैश्याये नाचती थीं, अब भले घरों की बहू-बेटिया नाचने लगी है। अपने आपको प्रगतिशील कहने का ढोंग रचने वाले समाज और कुल की देवियों को नर्तकी बनाने मे गर्व समझते है। लाहौर मे 'ओपन थियेटर' भी बन गये। बड़े बड़े खानदानों की बेटियाॅ यहाॅ नाचने आती है और दर्शकों की तालियों पर हर्ष से फूली नही समाती। अब आर्यसमाज को उधर ध्यान देना पड़ेगा।

कुप्रथाओं के विरुद्ध आन्दोलन करने के साथ-साथ वेद के पवित्र स्रोत से जन साधारण को अमृतपान कराने के लिये प्रादेशिक सभा के विद्वानों ने वेद कथायें करनी शुरू कीं। वेद का वास्तविक रूप उन्होंने संसार के सामने रखा। वेद-प्रचार को

सर्व प्रिय बनाने के लिये महात्माजी ने कई साधन बरते। मैजिक लैंटर्न का प्रबन्ध किया गया। स्वामी जी की जीवनी, रामायण, महाभारत आदि की स्लाइडे बनवाई गई। देहातों के लिये देहाती प्रचारक रखे गये। सम्मेलनों का सिलसिला शुरु कर दिया गया। वेद प्रचार कोष को स्थायी और सुसम्पन्न करने के लिये महात्माजी ने धन-संग्रह किया और आर्यसमाजों के नाम धनराशि नियुक्त कर दी। दीवाली-कोष, शिवरात्री-कोष के जन्मदाता भी महात्माजी ही थे।

आर्यसमाज के निष्काम सेवक श्री पण्डित लखपतराय जी की स्मृति मे 'लखपतराय सेवासघ' की नीव रखी गई और इसके लिये लगभग ८५००० रु० एकत्रित किया। श्री पण्डित लखपतराय जी काठगढ़ जिला होशयारपुर के सच्चे ब्राह्मण थे। वकालत पास करने के बाद आपने हिसार मे प्रैक्टिस शुरु की और अल्पकाल मे ही आप सारे इलाके मे सर्वप्रिय हो गये। पण्डित जी ने यह अपना सिद्धान्त बना लिया था कि वह कोई ऐसा मुकद्दमा न लड़ेंगे, जिसके झूठा होने का उन्हे विश्वास हो। उन्होंने अपने इस सिद्धान्त को बड़ी कट्टरता से निभाया। पण्डित जी जिस मुवक्किल का मुकद्दमा हाथ मे लेते, अदालत समझ जाती कि वह निर्दोष है। ज़िला जालन्धर के जाटों की निष्काम सेवा करने के कारण वह उनके देवता बन चुके थे। जाटों मे आर्यसमाज के प्रचार का सेहरा उन्ही के सिर है। वह निर्धनों के सच्चे प्रेमी और मौन-कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने ज़िला हिसार मे महात्माजी के दौरे का विशेष प्रबन्ध किया। एक एक गॉव मे घूमे। गर्मियों के कारण जल्से रात को होते थे। इस कारण प्रात. चलते और दिन को आराम करते।

जालंधर मे साईंदास एंग्लो वैदिक हाई स्कूल को कालिज मे परिणत करने के कार्य मे स्वर्गीय पण्डित मेहरचन्द जी को उन्होंने ही उत्सा-हित किया और कालिज की सफलता मे उनका बहुत हाथ था। महात्माजी के सुपुत्र श्री बलराज जी पर जब षड्यन्त्र का अभियोग चला तो अपना सब काम छोड़ कर वह दिल्ली मे बैठ गये और मुकद्दमा लड़ा। पण्डित जी ने आर्यसमाज की जो सेवा की है, उसका अनुमान लाला लाजपतराय जी के इन शब्दों से लगाया जा सकता है "यदि आर्यसमाजी मूर्त्तिपूजक होते तो सब से पहली मूर्त्ति पण्डित लखपतराय जी की बनती।" ऐसे निष्काम सेवक की स्मृति मे कराची मे लाला जसवन्तराय ने दयानन्द हाई स्कूल जारी किया। स्कूल के प्रिंसिपल लाला रामसहाय जी ने स्कूल को बहुत उन्नतावस्था मे पहुचा दिया है। 'लखपतराय सेवासंघ' प्रादेशिक सभा के अन्तर्गत काम करता है।

इसी तरह आर्यसमाज के एक और निष्काम सेवक पंडित रलियाराम बजवाडिया की स्मृति मे महात्माजी ने प्रादेशिक सभा की ओर से एक पुस्तक माला का प्रकाशन आरम्भ किया। पण्डित रलियाराम जी पहले सक्खर मे काम करते थे। वहाँ भीषण अग्निकॉड के अवसर पर उन्होंने अपनी जान जोखिम मे डाल कर कितने ही प्राणियों को बचाया। मुलतान मे प्लेग फैलने पर उन्होंने किस तरह रोगियों की सेवा की और एक रोगी की प्लेग की गिल्टी दांतों से काट दी, ये सब विगत पन्नों मे लिखा जा चुका है। पण्डित जी की शिक्षा अधिक न थी, तो भी उन्होंने प्रचार-कार्य अपनाया और ज़िला कांगड़ा को अपना कार्यक्षेत्र चुना। इस क्षेत्र में आर्यसमाज का नाम लेना भी जुर्म माना जाता था। कई बार पण्डित जी पर ईंटें

बरसाई गईं, कई कई दिन उन्हें बिन भोजन रहना पड़ा, परन्तु, अपने तप, त्याग और बलिदान से सारे इलाके के हिन्दुओं को आर्य समाज का भक्त बना दिया। 'गलियाराम पुस्तक माला' की पहली पुस्तक 'मुरली मनोहर' महात्माजी ने स्वयं लिखी। मुरली मनोहर हकीकतराय की तरह अपने धर्म पर बलिदान हो गये थे।

महात्माजी की यह प्रबल इच्छा थी कि सभा के आधीन एक बृहत् प्रकाशन विभाग हो। उन्होंने उसका प्रारम्भ भी किया। सभा की ओर से एक आर्य साहित्य विभाग की नीव रखी गई। लाला केशोराम जी इसके अधिष्ठाता चुने गये। इसकी ओर से 'सत्यार्थ प्रकाश' उर्दू, उड़िया, मलियालम और तामिल मे प्रकाशित किया गया। स्वामी अच्युतानन्द कृत वेदों के चार शतक छापे गये, जो बहुत प्रचलित हुये। पण्डित वाचस्पति एम० ए० को वैदिक साहित्य के सृजन के लिये नियुक्त किया गया।

महात्माजी ने जब आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के कार्य का विस्तार एव प्रसार किया तो उन्होंने अनुभव किया कि सच्चे और निष्काम प्रचारकों का अभाव है। इस अभाव पूर्ति के लिये उन्होंने दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय स्थापित किया, परन्तु इसमे अधिक सफलता नहीं मिल सकी। ८ जुलाई १६२१ को महात्माजी ने अपनी डायरी मे लिखा है, "मैने पण्डित लखपतराय जी से कहा है कि हमे नवयुवकों मे साधुओं और वानप्रस्थियों को प्रचार कार्य मे लगाना चाहिये, जो बौद्ध भिक्षुओं की तरह चार मास तो आराम करें और शेष समय प्रचार के काम में लगाये।" इसी उद्देश्य से वह पालमपुर मे

'साईदास साधन आश्रम' खोलना चाहते थे । साधुओं और सच्ची लग्न वाले सज्जनों की शिक्षा के लिये मोहन आश्रम हरद्वार मे एक विद्यालय खोला। परन्तु, थोड़े ही समय मे पता लगा कि साधु नियन्त्रण मे रहना पसन्द नही करते । स्वामी प्रकाशानन्द और भक्त बलदेवसिंह जी के कहने पर महात्माजी इस आशा से मोहन आश्रम के मन्त्री बने थे कि यह आश्रम निष्काम उपदेशकों, ईश्वर भक्तों और सच्चे साधुओं का एक केन्द्र बन सकेगा । इसी आशा से सभा की ओर से वहाँ एक अध्यापक भी नियुक्त किया गया । पढ़ाई आरम्भ हुई । कुछ लोगो ने शिक्षा भी ग्रहण की । गत पैंतीस वर्षों से निरन्तर यह प्रयत्न जारी है । मोहन आश्रम विद्यालय मे जितने भी साधु व अन्य विद्यार्थी प्रविष्ट हुये, उन्हे सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि और स्वामी दयानन्द जी का जीवन चरित्र पढाया गया । यह विद्यालय अभी तक काम कर रहा है ।[1]

१ मोहन आश्रम बसाने मे महात्माजी ने विशेष परिश्रम किया । जब उन्होंने आश्रम की जिम्मेदारी सभाली, तब इसमें तीन-चार कमरे ही थे । अपने सम्बन्धिया और मित्रो को प्रेरणा कर महात्माजी ने वहाँ कमरे बनवाये । तब वहाँ मलेरिया भी बहुत था । आबादी न थी । घना जंगल था । वन-पशु भी तंग करते । तो भी महात्मा जी हरद्वार जाते तो वहीं ठहरते । एक बार सरदार हुक्मसिह जी ने उन्हें अपने घर में ठहरने को कहा तो महात्माजी ने उत्तर दिया, "निस्सन्देह आपके पास ठहरने से मुझे सुविधा होगी। परन्तु, मुझे मोहन आश्रम को आबाद करना है । यदि मैं वहाँ न ठहरूंगा तो और कौन ठहरेगा ?"

परिडत रलियाराम जी बहुत देर तक मोहन आश्रम में रहे । लाला

प्रचार कार्य को विस्तृत करने के लिये महात्मा जी ने मेलों, कुम्भों और पर्वों पर प्रचार की योजना बनाई। सूर्य-ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र मे सभा की ओर से गत तीस वर्षों से निरन्तर प्रचार होता है। इसी तरह कुम्भ और अर्द्ध कुम्भ के अवसर पर हरद्वार मे महात्माजी ने प्रचार के बृहत् प्रबन्ध किये। ऐसे अवसरों पर महात्माजी स्वयं मोहन आश्रम मे जाकर ठहरते। सभा के बहुत से उपदेशकों तथा भजनीकों को साथ ले जाते और प्रचार कराते। १६३८ का कुम्भ अन्तिम कुम्भ था, जब महात्माजी प्रचारार्थ हरद्वार गये। तब मोहन आश्रम मे लाला धनीराम जी भल्ला ने बृहत् चतुर्वेदीय यज्ञ कराया था। इस अवसर पर निरन्तर प्रचार होता रहा। कुम्भ के अन्तिम दिनों मे हरद्वार मे हैज़ा फूट पड़ा। दिन मे दर्जनों मरते तो, रात मे बीसियों। महामारी से हाहाकार मच गई। सब ने महात्माजी से कहा कि वह लाहौर चले जाये, परन्तु उन्होंने स्पष्ट इन्कार कर दिया। और जब तक मोहन आश्रम से सब उपदेशक, यात्री और अतिथि चले नहीं गये, तब तक महात्माजी वही रहे। मोहन आश्रम मे रहने के कारण उनके

छज्जूराम भल्ला ने काफी समय दिया। दोनों महानुभाव वहॉ के जलवायु की प्रतिकूलता से अस्वस्थ हो गये। अकालगढ निवासी पण्डित रलियाराम जी वानप्रस्थी भी आश्रम की उन्नति के लिये कई वर्ष वहॉ रहे और अपना स्वास्थ्य बिगाड लिया। महात्माजी के मित्र पासला निवासी लाला शादीराम इसी आश्राम की भेंट हुये और स्वय महात्मा जी का स्वास्थ्य वहॉ के मलेरिया से ही बिगड़ा। तो भी उन्होंने इसे आबाद करने के प्रयत्न नहीं छोड़े और इसमें बराबर दिलचस्पी ली।

पेट में बहुत रोग पैदा हो गये, जिसकी उन्होंने कभी परवाह नहीं की।

सभा के कार्यक्षेत्र को महात्माजी ने भाषण और लेख द्वारा प्रचार तक ही सीमित नहीं रहने दिया, अपितु विस्तृत जन-सेवा और परोपकार कार्यों से देश भर की सहानुभूति आर्यसमाज के प्रति सजग कर दी। बीकानेर के अकाल से लेकर कांगड़ा, बिहार, कोयटा के भूकम्प तक और छत्तीसगढ़, उड़ीसा, गढ़वाल, काश्मीर व जम्मू के दुर्भिक्ष और मालाबार के उपद्रव तक बीसियों अवसरों और स्थानों पर पीड़ित, निस्सहाय, निराश्रय मानवता को सहायता और आश्रय दिया। महान् जनसेवा की विस्तृत कहानी विगत पन्नों पर उभर उभर आती है। इन और ऐसे अन्य कार्यों से आर्यसमाज सर्वप्रिय होने लगा। आर्यसमाज के विरोधी भी विवश हो गये कि जनसम्पर्क और जनप्रियता प्राप्त करने के लिये आर्यसमाज और महात्माजी के चरण-चिह्नों पर चलते हुये इन साधनों को अपनाये, अन्यथा उनका अस्तित्व तक न रहेगा।

इस अध्याय के आरम्भ मे महात्माजी के एक पत्र से हर विभाग के लिये सुयोग्य और उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तियों की खोज के लिये उनकी चिन्ता व्यक्त होती है। सभा के सम्बन्ध मे उन्हे विशेष चिन्ता थी। उन्होंने लाला देवीचन्द एम० ए० और लाला रामप्रसाद बी० ए० को बार-बार लाहौर आ कर यह कार्य संभालने की प्रेरणा की, परन्तु वे माने नहीं। तब महात्माजी ने मुझे सभा का कार्य संभालने का आदेश दिया। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का काम भारी उत्तर-दायित्व का काम है। लाला साईंदास एम० ए०, लाला

रामानन्द एडवोकेट, प्रिंसिपल दीवानचन्द एम० ए०, लाला रामप्रसाद बी० ए०, प्रिंसिपल मेहरचन्द एम० ए०, पण्डित श्रीराम एम० ए० के अलावा अनेकों महानुभाव इस कार्य को दक्षता एव सफलता से निभा चुके थे । इससे झिझका। पर, महात्माजी की आज्ञा शिरोधार्य करना मै अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। पहले उपमन्त्री और फिर मन्त्री का बोझ उठाना मैने स्वीकार कर लिया। उन दिनों कार्य करके मैने अनुभव किया कि सभा का उत्तरदायित्त्व निभाने के लिये मानव को अपना जीवन एक उच्च आदर्शमय सांचे मे ढालना चाहिये।

उन्ही दिनो मै आध्यात्मवाद की ओर खिचा और योगाभ्यास के लिये लाहौर से प्राय अनुपस्थित रहने लगा। एक बार तो कई महीनों के लिये मै उत्तराखण्ड चला गया। तब मन मे समाई थी कि अब लाहौर नहीं पहुंचूंगा । महात्माजी को जब यह समाचार मिला और मै कई महीनों के अज्ञातवास के बाद मोहन आश्रम हरद्वार पहुँचा तो महात्मा जी का पत्र आया कि शीघ्र लाहौर पहुचूँ । मैने लिखा कि लौटने को जी नही चाहता । तब महात्माजी का एक और पत्र आया। लिखा था:

"मुझे यह पढ़ कर प्रसन्नता हुई कि एकांत सेवन और लम्बे व्रत धारण करते हुये भी आपका शरीर आरोग्य है। यहाँ चिन्ता थी कि आपको कोई कष्ट न हो जाय। परमात्मा की कृपा से यह चिन्ता दूर हुई।..... ...आप २४ दिसम्बर को यहाँ अवश्य पहुंच जाये। आप आये या न आये, हमने तो अवश्य आपको सभा का प्रधान बनाना है । कोई कारण नहीं कि आप पर बोझ न डाला जाय, विशेषकर इसलिये कि सभा के

काम को सम्भालने के लिये कोई और योग्य व्यक्ति उपस्थित नहीं। सभा के काम को यों हीं फेक दे, यह धर्म नहीं। आपका भाव उच्च है कि अधिकार लिये बिना ही हम काम करे। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब काम करने वालों की संख्या अधिक हो। आप अवश्य कृपा करके लाहौर आ जाये। मै १६ दिन के पश्चात कल रात्रि बजवाड़ा से लाहौर पहुचा हू।

आपका शुभचितक—हंसराज"

और जब महात्माजी बीमार हो गये और उन्हे भास होने लगा कि यह बीमारी अन्तिम है तो उन्होंने मुझे बुला भेजा और अन्य बातों के अलावा कहा, "मै अब सभा की ओर से भी निश्चिन्त हो गया । वेद प्रचार की चिन्ता करने वाले तुम मौजूद हो।"

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने आज तक जो महान् सेवाये की है, उनकी पृष्ठ भूमि पर महात्मा हंसराज जी का नाम अङ्कित है। उन सब के विस्तृत विवरण के लिये एक अलग ग्रन्थ की आवश्यकता है। यह अब केवल दो प्रांतों की प्रतिनिधि संस्था नही है, इसके कार्य का विस्तार देश भर मे हो चुका है। मद्रास, आसाम, मध्यप्रांत, बिहार, बङ्गाल, गढ़वाल, बलोचिस्तान, काश्मीर, लद्दाख, कर्नल, सीमाप्रांत, सिंध, पञ्जाब सभी प्रांतो मे उसकी सरगर्मिया जारी है। डेढ़ सौ से अधिक प्रचारक काम कर रहे है। और अभी इसका प्रसार हो रहा है। १६४३ मे सभा की स्वर्ण-जयन्ति मनाई गई। इससे आर्य जगत मे नवजीवन, नव-उत्साह तथा नव-उल्लास का संचार हो गया।

१२.

अंतिम दिन

ये पंक्तियाँ लिखते कलम कांपती है।

जो आये, उसका जाना निश्चित है। काल किसी का लिहाज़ नहीं करता। हमारी आवश्कताओं को मौत का देवता नहीं देखता। विधि की इच्छायें मानव की इच्छाओं से अलग होती हैं। हम कुछ सोचते है, भगवान कुछ सोचता है। हम रहने-रखने की तदबीर करते है, वह जाने-लेजाने की तक़दीर बना देता है। हर प्राणी के सास गिने हुये है। पूरे होने पर लाखों दे दो, एक बढ़ नहीं सकता। जिसने पहला सांस लिया,

उसे अंतिम सांस लेना ही पड़ेगा।

यह सब जानते हैं, और मानते हैं कि आत्मा अमर है। केवल चोला बदलता है। तो भी, जिनसे हम प्यार करते हैं, जिनके लिये हमारे दिलों में श्रद्धा उमड़ती है, और सच पूछो तो, जिनके जीवन से हमे लाभ होता है, वे जब हमसे बिछुड़ते हैं या चोला बदलते है, तो हमारे मन दुख-शोक, संताप-विषाद और पीडा-दर्द से भर जाते हैं।

महात्मा हंसराज आये तो, उनका जाना भी निश्चित था। उनकी आत्मा अमर है, उनका नाम अमर है, उनका काम अमर है, परन्तु, शरीर तो किसी का अमर नहीं। ये मानते हुए भी उनके अंतिम दिनों की कहानी लिखते कलम इसलिये कांपती है कि उनके जीवन से हमारा स्वार्थ गुथा था।

इस कहानी का आरम्भ सन् अड़तीस के कुम्भ से हुआ। लिख चुका हूँ, मोहन आश्रम मे रहने के कारण उनका पेट स्थायी रूप से ख़राब हो गया और इससे उनका स्वास्थ्य दिन-दिन बिगडने लगा। हरद्वार से लौटे तो लाला यशवन्तराय जी एम० ए० के निमत्रण पर सलोघड़ (सोलन) चले गये। वहाँ की जलवायु ने अपना असर किया। महात्मा जी की सेहत सुधर गई। परतु, पेट का रोग ठीक नहीं हुआ। महात्मा जी सितम्बर मे लौटे थे और अक्तूबर मे पेट का रोग फिर उग्र-रूप धार गया। अक्तूबर के पच्चीसवें दिन प्रात वह नियमित सैर से पलटे तो स्नान कर रहे थे कि अचानक पेट मे दर्द महसूस हुआ। साथ बुख़ार भी हो गया। श्री बलराजजी लाहौर मे न थे, उन्हें तार दी गई। शाम को बुखार और भी तेज़ हो गया। डाक्टर विश्वनाथ जी ने इलाज शुरू किया। उन्होंने

नगर के प्रथमकोटि के डाक्टरों को बुलाकर विचार-परामर्श किया। सब ने संयुक्त रूप से उनकी परीक्षा की। कहा, "अवस्था चिन्ता-जनक है, परन्तु, आरोग्य लाभ की सम्भावना है।"

बीमारी के समाचार से सारा आर्य जगत चिंतित हो उठा। महात्माजी के स्वास्थ्य-लाभ के लिये प्रार्थनाये होने लगी। बेहतरीन इलाज और श्री बलराज, श्री योधराज और सुपुत्रियों तथा बहुओं की अनुपम सेवा से महात्माजी का स्वास्थ्य सुधरने लगा। उन दिनों महात्माजी का स्वास्थ्य जानने को लोग कितने उत्सुक थे, इसका प्रमाण तब प्राप्त हुये हजारों तारों, खतों और निजि-पूछ-पडताल वालों से चलता है।

५ नवम्बर को महात्माजी के बड़े जामाता दीवान राधाकृष्ण जी रियासत ईदर से हवाई जहाज़ द्वारा लाहौर पहुंचे। लाला देवीचंद, पंडित मेहरचंद, लाला साईदास आदि भी आ गये। पंडित मेहरचद से महात्माजी कहने लगे, "अच्छी निभ गई है, अच्छी गुज़र गई है। कुछ तो कर्त्तव्य पूर्ण हुआ ही है।"

पंडित जी ने कहा, "अभी और पूर्ण होगा।"

महात्मा जी बोले, "नहीं, अब तो अंतिम बीमारी ही है।"

बीमारी के आरम्भिक दिनों मे मै आर्यसमाज के उत्सव के संबंध में रियासत जोधपुर गया हुआ था। ३० अक्तूबर को मैं वापिस आया तो महात्माजी ने रियासत के संबंध मे विस्तृत वृत्तान्त जानना चाहा और रियासत की उन्नति एवं उत्थान की चाह प्रकट की। कहने लगे, "रियासत जोधपुर मे आर्यसमाज का प्रचार ज्यादा जोर से होना चाहिये। स्वामी

दयानंद इस रियासत को बहुत ऊंचा ले जाना चाहते थे ।"
रियासत हैदराबाद (दक्षिण) के बारे मे भी बातचीत हुई । मैंने उन्हे बताया कि वहाँ आर्यसमाज के प्रचार पर भी रियासत की ओर से प्रतिबंध है । आर्यसमाज की ओर से सत्याग्रह की योजना बनाई जा रही है । महात्माजी कहने लगे, "पहले एक बहुत बड़ा प्रतिनिधि सम्मेलन आर्यों का कर लेना चाहिये, जिसमे सब पक्षों और दलों के लोग हों । तब कोई निश्चय करना चाहिये । हिंदु महासभा और कांग्रेस की सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिये ।"

उन्हीं दिनों स्वास्थ्य फिर गिरने लगा । अवस्था चिंताजनक होने लगी । बक्षी टेकचद, रायबहादुर दुर्गादास, डाक्टर महाराजकृष्ण, लाला मेहरचद महाजन और अन्य महानुभाव बहुत चिंतित दिखाई देते । महात्माजी की तीनो सुपुत्रिया श्रीमती रत्नदेवी, श्रीमती चन्नदेवी और श्रीमती धर्मदेवी भी पहुच गई । समस्त आर्यजगत फिर चिंतित हो उठा । स्थान स्थान पर उनकी आरोग्यता के लिये प्रार्थनायें होने लगीं । इतनी मूक प्रार्थनाओं से रोग भी कापने लगा । अवस्था कभी सुधरती, कभी बिगड़ती । दो बार उनकी अवस्था सम्भली, परन्तु, श्वास पूरे हो रहे थे ।

९ नवम्बर को दुर्बलता बहुत बढ गई । पेट की पीड़ा अत्यन्त कष्ट दायक हो गई । पण्डित सुरेन्द्रमोहन, प्रिंसिपल दयानन्द आयुर्वैदिक कालिज और डाक्टर आशानन्द दिन-रात उनकी देखरेख करने लगे ।

इससे छः दिन पहले—नवम्बर के तीसरे दिन मैं महात्मा जी के पास बैठा था कि उन्होंने कहा, "आर्य समाज के बारे

मे कुछ पूछ लो।"

मैने कहा, "आर्य समाज और हम सब चाहते हैं कि आप ही आर्यसामाज की नौका के खेवनहार बने रहे।"

महात्माजी बोले, "यह ठीक है। इच्छा अच्छी है। लेकिन, न मेरी न आपकी इच्छा पूर्ण होनी है। इच्छा तो केवल परमात्मा की पूर्ण होगी।"

मैने कहा, "अभी आपकी बहुत आवश्यकता है।"

वे बोले, "होगी। लेकिन, जब वक्त आ जाता है तो फिर आवश्यकता देखी नहीं जाती। उसी की इच्छा पूर्ण होती है। इसलिये कुछ पूछ लो।"

मैने कहा, "आर्यसमाज और वेद प्रचार का काम किस तरह आगे बढ़ सकता है? कोई ऐसा गुर बताइये।"

वे बोले, "ऊँचे व्यक्तियों के बलिदान से ही यह काम हो सकता है।"

मैने कहा, "आर्यसमाजियों की शांति के लिये कोई बात बताइये।"

वे बोले, "बुरे या अच्छे कर्म ही शांति और अशांति का कारण बन सकते है और या फिर प्रार्थना करने से शांति मिलती है।"

इससे पांच दिन बाद—नवम्बर के आठवे दिन—सुबह जब मै महात्माजी को देखने गया, तो पता लगा कि रात के डेढ़ बजे महात्माजी ने मुझे याद किया था। मैं तत्काल उनके चरणों मे पहुंचा। मास्टर जैसाराम जी पास ही बैठे थे। एक और देवी भी बैठी थीं। महात्माजी ने कहा, "मास्टर जी, जरा बाहर चले जायें।" वह चले गये तो पूछा, "क्या कमरे मे कोई

और है ? हो तो वह भी चला जाय।" वह देवी भी उठकर चली गई।

महात्माजी और मैं अकेले रह गये।

उन्होंने धीरे से सिर उठाया और कहने लगे, "सांस का कोई भरोसा नहीं है।"

मेरा दिल भर आया। संभलते हुये बोला, "हमारा दिल चाहता है कि आप बीमारी पर विजय प्राप्त करें।"

महात्माजी के चेहरे पर तेज था। बोले, "कामना अच्छी है, लेकिन, फिर भी कुछ बातें कहता हूँ।"

और वे कहने लगे—

"मुझे यह प्रसन्नता है कि प्रादेशिक सभा का काम तुमने संभाल लिया है। वेद प्रचार का ध्यान रखने वाले तुम मौजूद हो। भविष्य में भी, चाहे योगाभ्यास छोड़ना ही पड़े, तो भी वेद प्रचार का ध्यान रखना।

"मुझे यह भी प्रसन्नता है कि कालिज का काम अब अच्छा चल रहा है। मेहरचन्द जी और गवर्धनलाल जी अच्छा काम करने वाले हैं। मुझे यह भी प्रसन्नता है कि टैक्नीकल कालिज भी अब बन जायगा। परन्तु, मुझे कुछ चिंता भी है।

"एक तो यह कि कालिज कमिटी में आर्यसमाजी व्यक्ति कम हो रहे हैं। हमें इस ओर ध्यान रखना चाहिये।

"दूसरी ....

"तीसरी, समाज का ढाँचा न बिखरे। इसके लिये बक्षी टेकचन्दजी से सदा परामर्श करते रहना। अच्छा हो यदि बक्षी जी जजी छोड़कर कालिज और समाज की सेवा का काम करें।

"भटिण्डा स्कूल में आवश्यक कमरे बन जायें। साधु

आश्रम होशियारपुर और मोहन आश्रम हरद्वार का ध्यान रखना।

"रियासतों मे वेद प्रचार कराने की ओर अधिक ध्यान देना आवश्यक है।

"मेरा संस्कार संस्कार-विधि के अनुसार ही हो। कोई फालतू या आर्यसमाज के विरुद्ध बात न हो।

"समाज का काम बराबर करते रहना।"

मैंने कहा, "मुझ मे तो कोई शक्ति नहीं।"

वे बोले, "परमात्मा आप शक्ति देगा।"

मैंने कहा, "आपने जो बाते कही है, उनको मै अपनी शक्ति अनुसार पूरा करूगा। आप कोई चिंता न करें।"

महात्माजी मुस्कराये और चुप हो गये।

मैंने फिर पूछा, "कुछ और !"

शांत स्निग्ध स्वर मे वे बोले, "बस और क्या ? तुमने कुछ पूछना हो तो पूछ लो।"

मैंने पूछा, "आप किसी का नाम बतलाये, जिसको आपकी जगह समझूं।"

महात्माजी बोले, "यह कहना बहुत कठिन है।"

मैंने तब कहा, "अच्छा, जाने दीजिए। दिमाग पर अधिक बोझ न डाले। क्या मै मन्त्र पढ़ूं ?"

एक सांस छोड़ते हुये उन्होंने कहा, "हॉ, 'ओं विश्वानि देव' का मन्त्र, इक्कीस बार . . . .!"

मैंने इक्कीस बार मन्त्र का उच्चारण किया।

और तब—

अंतिम घड़ी आ पहुंची।

बीस दिन की बीमारी के बाद १५ नवम्बर १६३८ को रात

के ग्यारह बजे विद्या, धर्म, बलिदान, तप और त्याग का सूर्य अस्त हो गया।

नब्ज़ कई दिनों से अनियमित हो रही थी। सास कई दिनों से उखड़ रहा था। १५ नवम्बर को ये सब और भी बिगड़ गये। तब मेरे अतिरिक्त बलराज जी, योधराज जी, डाक्टर महाराज कृष्ण, डाक्टर विश्वनाथ, लाला मुलकराज, बक्षी टेकचन्द, महात्माजी की तीनो सुपुत्रियां, बीबी बसती, श्रीमती यशवती, पोते-पोतियां, दोहते-दोहतियां वहां उपस्थित थे। श्वास उखड़ रहा था। अंतिम श्वास निकलना ही चाहता था कि महात्मा जी ने अपने सिर और मस्तक से तौलिया हटा कर ब्रह्मरंध्र को खुला छोड़ दिया।

सास उखड़ा।

हिचकी आई।

और खेल खत्म था।

एक बरस कम पौन शताब्दि तक जिसने अपना जीवन लोक कल्याण के लिये त्याग ही त्याग मे बिताया था, उसने आखिर अपने प्राण भी त्याग दिये। जगल की आग फैलने मे शायद देर लगती है, मृत्यु का समाचार तभी चारों ओर फैल गया। १६ नवंबर को सुबह आल इंडिया रेडियो ने महात्माजी की मृत्यु का समाचार ब्राडकास्ट किया और देश के कोने कोने मे शोक की घटा छा गई। शोक सभायें हुई। कई स्थानों पर हड़ताल हुई। स्कूल, कालिज, सरकारी, असरकारी कार्यालय बद हो गये। आर्य-जगत् मे हाहाकार मच गया।

महात्माजी का मृतक शरीर बलराजजी के मकान से दयानंद कालिज के हाल मे लाकर रखा गया, जिससे संतप्त श्रद्धालुओं

का उमड़ता सागर अपनी दृष्टि की लहरों से उनको अंतिम बार छू सके। भजन कीर्तन होने लगा। पंडित विश्वबन्धु, महता रामचन्द्र शास्त्री, पडित राजाराम और अन्य पडित वेद गायन करने लगे। सहस्रों नर-नारी श्रद्धा के फूल चढ़ाने लगे। राजा नरेंद्रनाथ जी चवर झुलाते रहे। श्री अफज़ल हुसैन, वाइस-चांसलर पंजाब यूनिवर्सिटी और श्री खुर्शीद, डिप्टी कमिश्नर लाहौर ने अपनी ओर से पुष्प-मालाये भेट की।

मृत-देह पर चदन का लेप किया गया। लाला धनीराम जी भल्ला ने सारा काम किया। अर्थी का लम्बा जलूस अनारकली और शहर के बाजारों मे से होता हुआ रावी के तट पर पहुचा। श्मशान भूमि मे तो इतना जनसमूह समा न सकता था। पजाब भर से आर्य लोग अतिम दर्शनों के लिये उमड़ कर चले आये थे। दो मील लबे जलूस मे हर नर-नारी की इच्छा उस शरीर को देख लेने की थी, जिससे उनका इतना उपकार बन पड़ा था। रावी के तट पर रात के समय जब महात्मा जी के शरीर को अग्नि की ज्वालाओं के सुपुर्द कर दिया गया तो किसी ही की आँखो मे आँसू थमे रहे। बड़ो बड़ों की आंखों की कोर मे पानी चमकने लगा। चौथे दिन फूल, अस्थिया राख सब रावी के बहते पानी मे बहा दिया गया। यही अतिम शोक दिवस था। इस अवसर पर स्वामी सत्यानंद जी की मर्मस्पर्शी प्रार्थना ने सब के दिल छू लिये।

भाई परमानंद जी ने कहा—'आज हिंदु जाति की भारी हानि हुई।'" और इस अवसर पर वीर मिलाप प्रेस लाहौर की ओर से महात्माजी का एक चित्र जनता मे बांटा गया, जिसके नीचे लिखा था:

"जिसने आर्य संस्कृति और आर्य समाज की मानमर्यादा के लिये अपना आप खो दिया, सब कुछ लुटा दिया,

"जिसने शिक्षा की जगमगाती किरणों से अज्ञात के अंधकार को नष्ट किया,

"और जिसने नये-पंजाब को जन्म दिया—

"उसी महान् आत्मा के श्री चरणों में—

"आँखों के आँसुओं,

"होंटों की आहों,

"और दिल के दर्द के साथ

"श्रद्धांजलि भेंट करते हैं।"

१३

श्रद्धा के फूल

महात्मा हंसराज के देहांत पर देश के कोने कोने मे शोक सभाये हुई। हर जाति के लोगों ने उनकी पुण्य स्मृति मे अपनी श्रद्धा के फूल भेट किये। लाहौर मे हुई शोक सभा मे राजा नरेंद्रनाथ ने कहा—

"देश-भक्ति और प्रभु-भक्ति यह दोनों गुण एक व्यक्ति मे कठिनाई से पाये जाते हैं, मगर, महात्माजी मे ये दोनों थे। ऋषि दयानंद के मिशन को पूरा करने के लिये उन्होंने अपना समस्त जीवन लगा दिया।"

सर शहाबुद्दीन स्पीकर पंजाब असैंबली ने कहा:

"महात्मा हंसराज के निधन का शोक केवल पंजाब को नही, सारे हिन्दुस्तान को है। महात्माजी जैसा नेक व्यक्ति हमे नही मिलेगा। ऐसा आदमी कोई माँ मुश्किल से ही जनेगी।"

डाक्टर गोकुलचंद नारंग ने कहा

'वह चट्टान की तरह सुदृढ़ थे, ध्रुव तारे की तरह अटल। उनमे एक विशेष शक्ति थी। कदम आहिस्ता आहिस्ता रखते थे, लेकिन जहाँ रखते थे, वहाँ की धरती को पता लग जाता कि किसी ने कदम रखा है।"

डाक्टर ल्यूकस वाइस प्रिंसीपल एफ० सी० कालिज ने कहा

'महात्मा जी त्याग, सेवाभाव, सरलता, सादगी, संयम और आत्म-बलिदान के आदर्श थे। वह सब सम्प्रदायों की सेवा करते थे। नवयुवकों को चाहिये वे केवल भाषण सुनकर ही न चले जाये, अपितु, महात्मा जी के गुण अपने मे पैदा कर देश और जाति की सही सेवा करे।"

महाशय कृष्ण ने कहा

"महात्मा जी का जीवन बलिदान की मुह बोलती तस्वीर है। वह त्याग के जीवित आदर्श थे। उनका त्याग बड़ा था, लेकिन, उनका तप इससे भी बड़ा था।"

सर जोधसिंह प्रिंसिपल खालसा कालिज ने कहा

"महात्मा जी ने अपने मिशन और उद्देश्य को पूरा करने के लिये हर बात को सहा और अंतिम श्वास तक अपने प्रण को निभाया।"

राय बहादुर लाला रामसरन दास ने कहा

"उन्हों ने हिंदु धर्म के मान को कायम रखा। वह सादगी

और शांति की तस्वीर थे। सारी आयु एक ही उद्देश्य के लिये काम किया। उन की याद मे सीस झुक जाता है।"

मिया अब्दुल हयी शिक्षा मन्त्री पञ्जाब ने कहा

"एक मुसलमान के रूप मे मैंने महात्मा जी से बहुत कुछ सीखा है। उनकी निर्धनता पर संसार के लाखों पूंजीपतियों की पूंजियां निछावर की जा सकती है। उस मुसलमान का जीवन गौरवपूर्ण है, जो महात्मा जी के चरण-चिह्नो पर चल कर जाति की सही सेवा करे।"

श्री अफजल हुसैन वाइस चांसलर पञ्जाब यूनिवर्सिटी ने कहा

"पंजाब मे इस समय जो शिक्षा का प्रचार दिखता है, इस मे बहुत भाग महात्मा जी का है। उन्हे सस्कृत और हिंदी से विशेष प्रेम था।"

और जब लाहौर की समस्त समाजों की सम्मिलित शोक सभा हुई तो बक्षी टेक चन्द जी ने कहा

"स्वामी दयानन्द के बाद जितने भी सेवक हुये, उन सब मे लंबी सेवा महात्मा हंसराज की है। वह परमात्मा पर अटल विश्वास रखते थे। उन्हे आर्यसमाज के नियमों और सिद्धांतों पर पूर्ण विश्वास था। वह कोई बात नियम या सिद्धांत विरुद्ध करना नही चाहते थे। वह निरंतर निष्काम सेवा करते रहे।"

इस सम्मिलित सभा ने महात्मा जी को 'निष्काम ऋषि' के नाम से पुकारा। सभा मे निम्न प्रस्ताव स्वीकार हुआ

"लाहौर की समस्त आर्यसमाजों की यह सम्मिलित सभा आर्यसमाज के मान्य नेता श्री महात्मा हंसराजजी के देहांत पर अपना हार्दिक शोक प्रकट करती है। महात्मा हंसराजजी

बाल्यकाल से लेकर अंत समय तक आर्यसमाज और आर्य-समाज की संस्थाओं की सेवा करते रहे। उनके हृदय में महर्षि स्वामी दयानन्द के लिये, वेद के सिद्धांतों के लिये और आर्य समाज को उन्नत करने के लिये एक प्रगाढ़ भक्ति और अनन्त भावनामय शक्ति थी। अविद्या को दूर करने के लिये वह निरंतर काम करते रहे। वहमों को मिटाने और वेद प्रचार कराने के लिये वह सदा तत्पर रहे। आर्यसमाज की उन्नति के लिये उन्होंने मान देखा न अपमान। ऐसे निष्काम-ऋषि का हम से बिछुड जाना आर्यसमाज की भारी क्षति है।"

और श्री 'यश' ने लिखा

"जो लहरों से लड़ लड़ कर पतवार हाथ मे थामे।
जो वक्ष चीर सागर का, उग्र तूफानी वेला में॥
जब झंझा के झोंके थे, उन्माद भरा था सागर।
मुह फाड़े तकते थे जब, लहरों के भूखे अजगर॥
जिसके अदम्य साहस ने, डर कर मुह ज़रा न मोड़ा।
जिसने अपनी नौका का, पल भर भी साथ न छोड़ा॥
उस नाविक को तकती हैं, मेरी यह आज निगाहें।
औ' अन्तस्तल से बरबस, निकलीं पड़ती है आहें॥"

१४.

पुण्य स्मृति में

अभी आँसू थमे नहीं थे कि आर्यजगत् ने आवश्यक समझा कि विगत महान्-आत्मा की पुण्य स्मृति को सजीव कर दिया जाय। इस प्रयोजन से दयानन्द कालिज कमिटी और आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से एक साझी समिति बनाई गई। बक्षी टेकचन्दजी ने धन-संग्रह का कार्य लाला साईंदास को सौंपा। लाला जी ने अपने स्वास्थ्य की तनिक भी चिंता किये बिना महात्मा हंसराज स्मारक के लिये दिन-रात एक कर दिये।

दूसरी ओर महात्माजी के सुपुत्रों और सुपुत्रियों ने महात्माजी

का स्मारक बनाने का निश्चय किया। श्री बलराज, श्री योधराज, श्रीमती रत्नदेवी, श्रीमती चन्नन देवी और श्रीमती धर्म देवी और उनके पतियों ने आर्य प्रादेशिक सभा को एक बहुत विशाल भवन बनवा दिया, जिसका नाम 'श्रद्धांजलि' रखा गया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से उन का स्वतंत्र स्मारक स्थापित किया गया। महात्माजी को अपने अंतिम दिनों मे वेद प्रचार की बहुत चिंता थी। सभा ने अपनी स्वर्ण जयन्ति के अवसर पर 'महात्मा हंसराज वेद प्रचार निधि' स्थापित करने का निश्चय किया। फैसला हुआ कि इस निधि मे एक लाख रुपया जुटाया जाय और रुपया जुटाने का बोझ मेरे निर्बल कधों पर डाला गया।

सभा ने निश्चय किया और विसर्जित ह' गई। परंतु, मै स्वभाव विरुद्ध कुछ उदास-सा बैठा था कि बावा प्रद्युम्न मिह एण्ड सन्ज के सचालक श्री बावा गुरुमुखसिंहजी मेरे पास आये। मुझे खिन्न-सा देख कर बोले, "क्या बात है ?"

मैने कहा, "एक लाख रुपया कैसे जुटेगा ?"

बावाजी कहने लगे, "होगा क्यों नही ?" आप काम शुरू कर दे, एक लाख तक जितना भी रुपया आप जमा करेंगे, उतना रुपया बावा प्रद्युम्नसिंह धर्मार्थ ट्रस्ट इस निधि मे अर्पण कर देगा।"

इससे मुझे उत्साह तो प्राप्त हुआ, परंतु, बावाजी ने साथ एक शर्त भी लगा दी कि यह रुपया दो महीने मे जमा हो जाना चाहिये। बावाजी की इस पेशकश से आर्यजगत मे एक विशेष हलचल पैदा हो गई। मैने भी साहस बटोरा और कमर कस ली। पैतालीस दिनों मे ही एक लाख से अधिक रुपया जमा

हो गया।[1] और १३ अप्रैल को वैशाखी के दिन श्री बावा गुरुमुखसिंहजी ने बृहद् हवन यज्ञ के बाद एक लाख रुपये के नोटों की माला मेरे गले में पहना दी। इस तरह 'महात्मा हंसराज वेद प्रचार निधि' में एक लाख की जगह दो लाख से अधिक रुपया जमा हो गया। इस धन से प्रादेशिक सभा इस योग्य हो गई है कि महात्मा जी की इच्छानुसार वेद प्रचार का कार्य विस्तृत कर सके।

महात्मा हंसराज जी की स्मृति में निम्न संस्थायें स्थापित हुईं

(१) हंसराज नगर–लाहौर छावनी के समीप जिस विशाल भूमि में दयानन्द टेकिनकल इंस्टीट्यूट बनाया गया है, और जहाँ घरेलू शिल्पकारी की योजना बन रही है, उस का नाम "हंसराज नगर" रखा गया है।

(२) महात्मा हंसराज महिला महाविद्यालय, लाहौर।

(३) महात्मा हंसराज वैदिक साहित्य विभाग, महात्मा हंसराज रोड, लाहौर।

(४) महात्मा हंसराज वेद प्रचार निधि।

(५) महात्मा हंसराज हाई स्कूल, भठिण्डा।

(६) महात्मा हंसराज डिस्पैंसरी, अमृतसर।

---

१ एक लाख रुपया जमा करने में सरगोधा के डाक्टर गोविंदराम जी मानकटाहला, मुलतान के चौधरी मुरलीधर जी, डाक्टर भटानी जी, बंबई के बावा महाराजसिंहजी, अमृतसर के सरदार अमरसिंहजी, सरदार शमशेरसिंहजी, बावा गुरुमुखसिंहजी और अन्य भाइयों ने मेरी विशेष सहायता की और समस्त आर्यजगत ने जो अद्वितीय उत्साह दिखाया, उसका उदाहरण नहीं मिलता। मैं सबका धन्यवाद करता हूं।

(७) महात्मा हंसराज हाल, डी० ए० वी० हाई स्कूल, लाहौर ।
(८) महात्मा हंसराज रीडिंग रूम, बम्बई ।
(९) महात्मा हंसराज आर्य वीर संघ ।
(१०) महात्मा हंसराज पुस्तकालय दयानन्द कालिज लाहौर ।

१५.

संस्मरण

[१]

दयानंद कालिज को जीवन अर्पण कर देने के बाद महात्मा हंसराज जी को इतना काम करना पड़ा कि स्वास्थ्य गिरने लगा। शरीर दुबला होगया। रंग पीला। हलका हलका बुखार भी रहने लगा। एक दो डाक्टरों ने यहाँ तक कहा कि यदि यही अवस्था रही तों कुछ ही दिनों मे तपेदिक हो जाने का भय है। महात्मा जी के मित्रों और सम्बन्धियों ने जब यह सुना तो, उन्हे चिंता हुई। पहले अलग अलग फिर इकट्ठे उन्होंने

उनसे कहा कि वह कुछ महीनो के लिये कालिज का काम छोड़ कर किसी पहाड पर चले जाये। महात्माजी ने अपने परामर्श-दाताओं की सब युक्तियां मानी, परन्तु, उत्तर दिया, "इसके बाद भी मै अपना जीवन बचाने के लिये किसी पहाड पर नहीं जा सकता। अपने काम को छोड़ नही सकता। क्योंकि यह जीवन तो मेरा है ही नही, मै तो पहले ही इसे दयानंद कालिज को सौप चुका हूं। अब यह रहे या न रहे। मेरा इससे कोई सम्बन्ध नही।"

[२]

महात्मा जी अपने मित्रो, सम्बन्धियों और आर्यसमाज के सदस्यों मे अत्यधिक व्यस्त रहने के बावजूद इतनी दिलचस्पी लेते थे कि उसका उदाहरण नही मिलता। लाला धनीराम भल्ला बतलाते है कि आर्यसमाज क साप्ताहिक सत्सग मे वह चुपचाप एक ओर बैठे रहते और सबको देखते रहते कि किसी का स्वास्थ्य तो नही बिगड रहा। एक दिन उन्होंने लाला धनीराम भल्ला को सत्सग के बाद अपने पास बुलाया और कहा, "मै कितने ही दिनों से देख रहा हूँ, आपकी सेहत अच्छी नही। आप कमजोर हो रहे है। कमजोरी तो पाप है। आप व्यायाम किया करे।"

[३]

महात्माजी कितने हॅसमुख थे, इसकी एक साधारण-सी झांकी इस घटना मे आँकिये। स्वर्गीय लाला लालचन्द जी का देहांत हो गया। महात्माजी को उनसे बहुत प्रेम था। किसी ने पूछा, "लाला लालचन्दजी की मृत्यु का कारण क्या है ?"

महात्माजी बोले, 'वह हंसते न थे।"

[४]

एक बार आर्यसमाज के उत्सव पर महात्माजी बंबई गये। महता रामचन्द्र शास्त्री भी साथ थे। महताजी ने कहा, "यहाँ घड़ियाँ सस्ती मिलती हैं। दो चार घड़ियाँ ले चलें !" महात्मा जी हंसकर बोले, "महता जी ! आप हैं उपदेशक। शहर शहर जाना होगा। यदि हर जगह ऐसे ही खरीदना-बेचना शुरू किया तो दिवाला पिट जायगा। केवल वही चीजें खरीदें, जिन की नितांत आवश्यकता हो !"

[५]

मिंटो मार्ले सुधार योजना के आधीन जब पञ्जाब कौंसिल के चुनाव आरम्भ हुये, तो किसी ने महात्माजी से कहा "आप भी चुनाव में खड़े हो जायें। निश्चय ही आप सफल होंगे। और उसके बाद मन्त्री भी बन सकेंगे।" महात्माजी ने हँसकर उत्तर दिया, "मैं एक सफल मन्त्री नहीं बन सकता, क्योंकि मेरे अधीन मंत्री बनना किसी को सहन न होगा। मैं तो जो भी काम करूँगा, बिना वेतन के। तब मेरे अधीनस्थ बड़े बड़े वेतन लेकर मेरी आज्ञा क्यों मानेंगे ?"

[६]

आर्य समाज के दोनों दलों में जिन दिनों झगड़ा चल रहा था, उन दिनों की बात है। एक सज्जन महात्मा जी को बेअंत गालियाँ निकाला करते। एक दिन यही सज्जन किसी कार्यवश महात्माजी के पास आये। मास्टर गोविंद सहाय उनके पास बैठे थे। आगंतुक को देख कर बोले, 'यही है वह आदमी, जो. . .. .. !"

• महात्मा जी मुस्करा कर बोले, "मास्टर जी ! इस समय

कुछ नहीं। यह मेरे मेहमान हैं।"

[७]

शुरू शुरू में महात्माजी के साथ ही साथ लाल लाजपतराय, प्रोफ़ेसर देवीदयाल और पंडित राजाराम सब ने दाढ़ियां रखीं। बाद में महात्मा जी के सिवा सबने मुंड़वा दीं। एक व्यक्ति ने पूछा, "आपके साथियों ने दाढ़ियां क्यों मुंड़वाईं ?"

महात्मा जी हंस कर बोले, "लाला लाजपतराय ने इसलिये कि वह योरुप गये थे, पंडित राजाराम ने इसलिये कि उन्हें ब्याह कराना था; लेकिन, प्रोफेसर देवीदयाल ने यह मुफ्त का खर्च क्यों बर्दाशत किया, यह मैं नहीं जानता।"

[८]

महात्मा जी को अपने विद्यार्थियों से बहुत प्यार था। ग़रीबी के दिनों में भी वह इन लड़कों को अपने घर बुलाते। उनहे आर्य समाज का संदेश सुनाते। और जब 'अतिथि सत्कार' का समय आता तो, और कुछ न होने पर उबले आलू ही नमक लगा लगा कर खिलाया करते।

[९]

तब की बात है जब आर्य समाजियों के भेदभाव के कारण महात्मा जी पर प्रैस और प्लेटफार्म से निरंतर हमले हो रहे थे। एक बार एक आदमी ने बहुत ही असभ्य ढंग से एक लेख लिखा। महात्मा जी के एक भक्त ने पूछा, "आपने यह लेख पढ़ा ?"

महात्मा जी हंस कर बोले, "मैं अपने विरोधियों को यह अनुभव करने की खुशी नहीं दे सकता कि उनके लेख मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं। मेरी कुल शक्ति अपने

काम के लिये है। निरर्थक लेख पढ़ कर मै अपने काम का अलाभ करना नही चाहता।"

[१०]

बलराज जी छोटे बच्चे थे कि उन्होंने महात्मा जी से पूछा, "पिता जी! कोहेनूर हीरे का क्या मोल है?"

महात्मा जी बोले, "इसका मोल है एक पुरानी टूटी हुई जूती। शर्त केवल यह है कि उसे बरतने की शक्ति हो!"

[११]

महात्मा जी के पास एक नौकर था—लट्टूरिया। वह कई बरसों तक उनके पास रहा। नौकरी के पहले दिनों मे उससे कोई भूल बन पड़ी तो बलराज जी ने उसे तमाचा मारा। महात्मा जी को पता लगा तो, उन्हे दुख हुआ। बलराज जी ने कहा, "लेकिन वह मूर्ख है, उसे कोई अक्ल ही नही!"

महात्मा जी ने गंभीरता से कहा, "बलराज! यदि उसे अक्ल होती तो वह तुम्हारे घर बर्तन मांजने की नौकरी न करता। किसी कालिज का प्रिंसिपल होता!"

[१२]

पंडित नानकचन्द जी बैरिस्टर जब पढते थे तो महात्मा जी की निर्धनता और सादगी देखकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। एक दिन पंडित जी महात्मा जी को मिलने उनके घर गये तो देखा कि आधी फटी हुई, परन्तु, बिल्कुल साफ धुली हुई कमीज पहने खड़े है।

इसी तरह, एक बार उनकी आँख पर चोट लगी। भाई परमानद वही थे। डाक्टर आया। पट्टी बाँधने के लिये थोड़ा कपड़ा माँगा तो महात्मा जी के घर से फटे कपड़े का टुकड़ा

तक नहीं मिला।

[१३]

महात्मा जी बीमार थे तो लाला देवीचंद जी उनके पास गये। महात्मा जी ने उनसे कहा, "मै बहुत बीमार नही हूँ, जरा कमज़ोर हो गया हूँ। थोड़ी ताकत आते ही मै आर्य समाज बागबानपुरा मे भाषण देने चलूंगा। मैने उनके साथ वायदा किया हुआ है।"

लाला देवीचद ने कहा, "बीमारी हट जाने के बाद भी आपको काफी दिनों तक आराम करना पडेगा। आप बागबानपुरा मे भाषण देने का विचार छोड़ दीजिए।"

महात्मा जी बोले, "भगवान को क्या मंजूर है, यह मै नही जानता। परतु, यदि मेरा बस चला तो, मै अपना वायदा जरूर निभाऊँगा।"

[१४]

महात्मा जी के श्रद्धालु कई तरह के उपहार उनके लिये लाया करते। महात्मा जी वे सब कालिज को दे देते। एक बार एक मित्र उनके लिये आगरे से संगे-मरमर का एक सुंदर कलमदान लाये और शाम को उनके घर रख आये। महात्मा जी घर मे नही थे। इसलिये उन्हे मिलने दूसरे दिन कालिज मे गये तो देखा कि वह कलमदान कालिज के मेज़ पर पड़ा है।

आर्य समाज के उत्सव पर एक सज्जन ने उन्हे चाय का एक बंडल और कुछ बादाम दिये। महात्मा जी ने ये सब वहीं बाँट दिया।

[१५]

महात्मा जी ने अपनी लंबी आयु मे एक बार भी सिनेमा

नहीं देखा। एक बार बलराज जी ने उनसे कहा, "अगर आप को भीड़भाड़ में सिनेमा देखने में झिझक हो तो, मैं यह प्रबंध करा सकता हूँ कि केवल आपके लिये ही एक शो करवा दूँ।"

महात्मा जी ने सदा की तरह इन्कार करते हुए कहा, "सिनेमा में चलती फिरती तस्वीरें ही तो होती हैं। जब मैं आप लोगों को चलते फिरते देखता हूं तो, फिर सिनेमा देखने की जरूरत क्या है ?"

[१६]

लाला पोलोराम जी ने एक घटना सुनाई कि जब वह डाकखाने में नौकर थे तो नकदी में से कुछ रुपये कम हो गये। लाला जी शाम के समय उदास-से घर लौट रहे थे तो राह में महात्मा जी मिल गये। उन्होंने उदासी का कारण पूछा तो, लाला जी बोले, "कुछ रुपये कम हो गये हैं। कई बार हिसाब की जाँच की है। रुपया गिना है। लेकिन, वह पूरा नहीं होता।" महात्मा जी बोले, "कल सुबह दस बजे से आध घंटा पहले चले जाना। फिर पड़ताल करना। अगर रुपया पूरा न हो तो अपने पास से डाल देना। नकदी को कम न होने देना।"

दूसरे दिन लाला पोलोराम जी ने फिर हिसाब देखा, परंतु रुपया पूरा नहीं हुआ। उसी समय दयानन्द कालिज का चपरासी महात्मा हंसराज जी की धर्म-पत्नी श्रीमती ठाकुर देवी की डाकखाने की पास-बुक और हस्ताक्षर हुआ एक खाली फार्म लेकर उनके पास आया। इसके साथ ही महात्माजी का पत्र भी था। लिखा था, "जितना रुपया कम हो, वह इस फार्म द्वारा डाकखाने से निकलवा कर पूरा कर लेना।"

[१७]

लाला दीवानचंदजी एम० ए० लिखते है.

महात्माजी व्यापारी मनोवृत्ति के आदमी थे। जिस अवस्था मे हों, उसके अनुसार कार्य करते। कालिज मे वह प्रिंसिपल हैं और घर मे लाला हंसराज। घर मे प्रिंसिपल नहीं और कालिज मे लाला हंसराज नही। घर मे प्रत्येक व्यक्ति उनके पास जा सकता था। पहले वह धरती पर ही आसन जमा कर बैठते। बाकी सब भी उनके साथ ही बैठते। बाद मे वह एक तख्तपोश पर बैठने लगे और आने वाले भी वही बैठते अथवा काठ की पीठ वाली आधी टूटी कुर्सियों पर। कालिज मे वह प्रिंसिपल थे। उनका रौब कमरे से बाहर भी दूर दूर तक झलकता था।

विद्यार्थी-काल मे मै 'आर्य-गजट' का उप-सपादक था। महात्माजी और लाला लाजपतराय सपादक थे। मै युवक समाज का मंत्री भी था, इसलिये उनके पास आने-जाने की मुझे विशेष सुविधा थी। बी० ए० मे पढ़ता था कि एक दिन मुझे यूनिवर्सिटी कैलेण्डर देखने की आवश्यकता हुई। मेरे मांगने पर उन्होंने उठा कर दे दिया और मै उसे वही खोल,कर देखने लगा।

महात्माजी बोले, "बाहर जाकर।"

मैने अपनी भूल अनुभव की और कैलेण्डर लेकर बाहर निकल गया। उस समय मुझे ख्याल न था कि मुझे भी कभी कालिज का प्रिंसिपल बनने का अवसर मिलेगा। लेकिन अब मै यह अनुभव करता हूँ कि महात्माजी की उस डॉट और विशिष्ट व्यवहार ने मुझे अपने जीवन मे बहुत सहायता पहुंचाई है।

[१८]

श्री बलराज लिखते है

श्री महात्माजी का स्वभाव था कि वे प्रात काल ब्रह्ममुहूर्त मे जाग कर चारपाई पर बैठे हुए ही गाते रहते थे। प्राय दो भजन वे गाया करते थे ।

(१) उठ जाग मुसाफिर भोर भई,
अब रैन कहाँ जो सोवत है।

(२) हे जगत् स्वामी प्रभु जी
भेट धरू मै क्या तेरी।

कभी कभी वे कोई और भी भजन गाते थे। उन मे निम्नाङ्कित टेक वाला भजन प्राय सुना जाता था—

तुम हो प्रभु चान्द मै हू चकोरा,
तुम हो कमल फूल मै रस का भौरा।

ऋग्वेद का एक मन्त्र उन्हे अत्यन्त प्रिय था और कई बार उस का जप किया करते थे। कभी कभी तो आध आध घण्टा तक उसी मन्त्र का जाप करते रहते थे। वह मन्त्र निम्न लिखित है—

यदङ्ग दाशुषे त्वम् अग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेतत् सत्यमङ्गिर ॥

[१६]

जब कभी श्री महात्मा जी कही जाने लगते थे तो घर के बाहर मोटर मे बैठने समय "ओ३म विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।. यद्भद्रं तन्नआसुव ।" मंत्र पढ़ा करते थे। जब कभी आप का कोई बन्धु कहीं बाहर जाने लगता तब भी आप उसे मोटर मे बिठाते समय इसी मन्त्र को बोला करते थे। मैने अपने विषय मे भी सदा उन्हें इसी मन्त्र को बोलते

सुना है।

[२०]

श्री महात्मा जी प्रातःकाल ठोस डम्बलों से व्यायाम किया करते थे। जब आप की अवस्था अधिक वृद्ध हो गई तो आप डम्बलों के बिना ही बलपूर्वक मुट्ठियों को बन्द करके व्यायाम कर लेते थे। यह व्यायाम आप अपने अन्तिम रोग के दिन २७ अक्तूबर १९३८ तक करते रहे। जब कभी वर्षा आदि के कारण आप भ्रमणार्थ बाहर न जा सकते तो घर में ही लगभग उतना समय घूम लिया करते।

[२१]

महात्मा जी ने अपने सारे विद्यार्थी-जीवन में परीक्षा के निमित्त कभी संस्कृत का विषय नहीं लिया और न ही संस्कृत पढ़ी। जब आप बी० ए० के विद्यार्थी थे तो आप समाज में आने जाने लगे। समाज में प्रविष्ट होने के अनन्तर आप ने वहीं पर संस्कृत सीखनी आरम्भ की। उन दिनों संस्कृताध्ययन के प्रति आर्य सज्जनों को श्रद्धा तथा रुचि थी। स्वर्गीय श्री लाला सांईदास जी भी, यद्यपि वे इतना उच्च सरकारी-पद धारण किए हुए थे, रात्रि के समय समाज में जा कर अष्टाध्यायी पढ़ा करते।

[२२]

महात्मा जी ने शिक्षा प्रसार का कितना काम किया, इस तथ्य के होते हुए भी लाला मुल्क राज जी द्वारा कई बार बताई हुई निम्न घटना बहुत मनोरंजक है।

महात्माजी को जब एक बार पठनार्थ स्कूल में जाने के लिए कहा गया तो आप ने कहा कि मैं नहीं पढ़ूंगा। लाला जी

के जोर देने पर आप फिर उसी बात पर अडे रहे और कहा कि 'चाहे कुछ भी हो पर मैने पढ़ना नही है।' तदनन्तर लाला जी ने बलात उन्हे स्कूल मे भेज दिया और एक दो मास के परिश्रम से ही महात्माजी ने वह परीक्षा अच्छी पोज़ीशन ले कर उत्तीर्ण की। इस पर आप के हैडमास्टर साहिब अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और प्रसन्न होकर उन्होंने महात्माजी को अपने पास से एक विशेष पारितोषिक दिया।

[२३]

महात्माजी की रुचि वेद, उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन मे अधिक थी। पण्डित राजाराम जी द्वारा सम्पादित तथा अनूदित श्रीमद्भगवद्गीता १६१४ मे पढी थी। तब महात्मा जी ने वह पुस्तक इन्टरलीव (हर पन्ने मे एक कोरा पन्ना रखना) करवा कर अपने पास रख ली थी। उस पुस्तक का अध्ययन आप पीछे करते रहे है। वह पुस्तक अब मेरे पास है। उस पर बहुत कुछ लिखा तो नही है। एक दो स्थलों पर ही कुछ थोड़ा-सा लिखा है। पर यह इस बात को अवश्य दर्शाता है कि गीता के अध्ययन मे आप को विशेष रुचि थी।

[२४]

महात्मा जी ने इङ्गलैण्ड मे भी स्वदेशी वेश ही रखा था, अर्थात् पगड़ी और बन्द गले का कोट।

[२५]

लाला हरकिशनलाल जी लिखते है

मेरे पितामह जी रेलवे मे क्लर्क थे। श्री लाला मुल्कराज जी भी अच्छे काम पर थे। महात्माजी जाति-सेवा के श्लाघ्य कार्य मे तत्पर थे। महात्माजी इस बात को भली प्रकार जानते

थे कि कुछ वृत्तिएं सांसारिक कार्य-क्षेत्र मे ऐसी भी है, जिन्हें कि कुलीन हिन्दु घृणा की दृष्टि से देखते हैं और वे वृत्तिएं है अच्छी लाभदायक, पर उन पर एकाधिकार यवनों का है। आप की दृष्टि में एक ऐसा व्यवसाय जूते अथवा बूटों का था। इस व्यवसाय के द्वार को हिदु जाति के लिये विवृत करने के विचार से आप ने अपने सुपात्र भाई तथा सुयोग्य शिष्य हमारे पिता लाला धनीराम जी भल्ला को इस व्यवसाय में लगाया तथा इस व्यापार को सफलीभूत करने के लिए तथा हिन्दुओं के हृदयों से इस व्यापारिक घृणा को विध्वस्त करने के लिए आप स्वयं पूर्ण योग देते थे। आप स्वयं इस दुकान के लिए अपना अमूल्य समय देते थे, देख-भाल करते थे और प्रत्येक प्रकार की सहायता करते थे। आप ही के परिश्रम से यह दुकान फूली और फली, और इस दुकान को सफल हुआ देख कर और भी सैकड़ों हिन्दुओं ने इस व्यवसाय को अपनाया और अब यह व्यवसाय हिन्दुओं के लिए एक गौरवान्वित तथा लाभदायक वृत्ति बन गया है। हिन्दुओं के इस वृत्ति के दर्शक तथा उद्धारक श्री महात्मा जी ही थे, अत हम आप को सदा 'वृत्तीश्वर' की दृष्टि से देखते है।

[२६]

आर्य समाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर हमे स्कूल मे नगरकीर्तन मे सम्मिलित होने से पूर्व ही कह दिया जाता था कि नगरकीर्तन मे आदि से अन्त तक सम्मिलित रहना और भली प्रकार भजन बोलते जाना, क्यों कि नगर मे कही न कहीं महात्मा हंसराज जी आप का निरीक्षण करेंगे। इस बात को सुन कर हम लोग बड़े चाव तथा जोश से भजन गाते जाते और

अन्त तक उस मे सम्मिलित रहते। मन मे सदा यही ध्यान रहता कि न जाने कहाँ पर महात्मा जी खड़े हों। महात्माजी नगरकीर्तन आदि की पड़ताल स्वयं करते थे। आप किसी न किसी थड़े पर खड़े हुए नगरकीर्तन का निरीक्षण करते अवश्य दीख पड़ते थे। महात्माजी नगरकीर्तन मे कभी सम्मिलित न हों, यह नही हो सकता था। आज-कल के बहुत से बड़े बड़े आर्य सज्जनों की भांति वे इसे उपेक्षादृष्टि से कभी न देखते थे।

[२७]

श्री महात्मा जी को पैसे की बहुत कद्र थी। पैसे को अनुचित रीति से कभी व्यय न करते थे। आप के जीवन मे एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह थी कि आप को अत्यधिक सफर करना पड़ता था। पर, आप ने अपने सारे जीवन मे इण्टर क्लास से ऊपर के दर्जे मे कभी सफर नहीं किया।

[२८]

जिन दिनों महात्मा जी इङ्गलैंड गए हैं, उन दिनों मेरे बाबा जी ही हमारे परिवार के सबसे वृद्ध व्यक्ति थे। इङ्गलैंड जाने के दिन लाहौर रेलवे स्टेशन पर एक अद्‌भुत दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा था। हज़ारों की संख्या मे मनुष्य स्टेशन पर आप को विदा करने के लिए तथा आप के दर्शन करने के लिए एकत्रित थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई मेला लगा हो। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति आप के चरण छू कर नमस्ते करने मे संलग्न था, क्योंकि इससे वह अपने आप को गौरवान्वित समझता था। उस समय लोगों ने देखा कि श्री महात्मा जी कुछ पग वेग से एक ओर बढ़े और आपने स्वयं एक व्यक्ति के चरण स्पर्श कर के समादरपूर्वक प्रणाम किया। ये व्यक्ति आप के चचा लाला छज्जूराम

जी थे। प्रत्येक द्रष्टा के नेत्रों मे प्रेमाश्रु भर आए। यह थी महात्मा जी की हलीमी !

[२६]

पंडित सरस्वती नाथ जी लिखते है

१६२३ के मार्च तथा एप्रिल मास मे श्री महात्मा जी दिन रात आगरे मे शुद्धि के कार्य मे तत्पर रहे। एक क्षण के लिए भी आप ने विश्राम न लिया। जिस गॉव मे शुद्धि होती थी उस गॉव मे पंदल ही अपने साथियों के साथ जाया करते थे।

एक दिन अमृतसर के महाशय देव प्रकाश जी ने आप से निवेदन किया, "आप कई बार आगरे पधारे है, परन्तु, आप ने यहाँ के आस पास के ऐतिहासिक स्थानों को कभी नहीं देखा। आप कितनी देर से दिन-रात एक कर के अपने कार्य मे व्यस्त है। हमे भय है कि अत्यधिक परिश्रम के कारण कहीं आप रुग्ण न हो जाए। अत हमारा आप से नम्र निवेदन है कि आप एक दिन के लिए विश्राम करे और उस दिन फतहपुर सिकरी की सैर कर आवे।" बड़े आग्रह के अनन्तर बड़ी कठिनता से आप ने उस प्रार्थना को स्वीकार किया।

अन्तत एक दिन मई मास मे श्री महात्मा जी, श्री महाशय देव प्रकाश जी और मै फतहपुर सिकरी की सैर को गए। आप ने अब के ही पहिली बार फतहपुर सिकरी देखा। इमारतो का निरीक्षण करने के अनन्तर आप ने अकबर के समय के हिन्दुओं की अवस्था पर प्रकाश डालना आरम्भ किया, और बीच बीच मे मै भी कुछ बाते बताता रहा। मुझ से आप ने कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि तुम उन दिनो मे भी यहीं घूमा-फिरा करते थे।"

[३०]

१९२८ ईस्वी के कुम्भ के दिनों मे एक दिन महात्मा जी और मै सैर से लौट रहे थे। बाते करते हुए आप ने कहा, "पण्डित जी ! आप भोजन मोहन आश्रम मे नही करते है। भोजन का प्रबन्ध आप ने अन्यत्र कर रखा है। मुझे विदित नहीं कि आप क्या क्या पदार्थ भोजन के साथ खाते है। मैं आप को यह सलाह देता हूँ कि आप भोजन के साथ प्याज़ और आमले का अचार अवश्य खाया करे, क्योंकि कुम्भ के बाद हैज़ा फैल जाता है। अत आप इस वहम को छोड दे कि हरिद्वार में प्याज खाना ठीक है वा नही।"

[३१]

इसी अवसर पर एक और दिन प्रात कालीन भ्रमण से लौटते हुए आप ने इस बात को खेद से अनुभव किया कि डी० ए० वी० स्कूल का कोई भी अध्यापक कुम्भ के मेलो मे सम्मिलित नहीं हुआ है। आप ने कहा, "बेहतर होता कि कोई न कोई स्कूल का अध्यापक यहाँ अवश्य होता, जिससे उसको सेवा करने का अवसर मिल जाता और उसे यहाँ के लोगों की अवस्था का भी पूरा पूरा ज्ञान हो जाता।'

[३२]

पडित मस्तान चन्द जी लिखते है·

मै प्रात काल उठ कर 'लोअर माल' पर उनके दर्शनों को भाग कर जाया करता था। 'नमस्ते' कह कर जब पास पहुँचता तो, हंस कर कह उठते, "आज ब्राह्मणी ने छुट्टी दे दी।"

"हाँ महाराज ! आज छूट्टी मिल गई है तभी तो आ गया हू। आप की तरह बेफिकर बानप्रस्थी थोडे ही हूँ कि सड़कों

पर बिना किसी कार्य के ही फिरता रहूँ ।" यह उत्तर पा कर आप बहुत ज़ोर से हसते थे। और कभी कभी पीठ पर एक आध थपकी भी लगा देते थे।

[३३]

मेरा एक बच्चा चार वर्ष की आयु मे परलोक सिधारा। बच्चा छोटा था इस वास्ते किसी को कष्ट देना उचित न समझ कर एक दो पड़ोसियो की सहायता से बच्चे को जल मे प्रवाह आया। न जाने महात्माजी को किसने यह समाचार पहुँचा दिया। चौथे दिन दौड़ कर चपड़ासी ने यह समाचार दिया कि महात्माजी आपको मिलने आए हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । मै बाहर निकला। हाथ जोड़ नमस्ते कही। नौकर ने दो कुर्सियां बाहर निकालीं और हम दोनो बैठ गये। महात्माजी ने बैठते ही कहा, "बच्चे को क्या हुआ था ? मुझे तो सायकाल को ही पता लगा। बड़ा ही दु ख हुआ।" मेरी आंखों से दो आँसू निकले। मैने बच्चे की सारी बीमारी की कहानी सुनाई। ध्यान से सुनते रहे और मुझे धैर्य्य देते रहे। मैने पूछा, "आप ने क्यों कष्ट किया ?" इसका कोई उत्तर नही मिला और थोड़ी देर बैठ कर वापिस चले गये।

[३४]

१६२७—२८ मे गढ़वाल मे विकट अकाल पड़ा। महात्मा-जी ने सहायता के लिये अपील की। दान धड़ाधड़ आने लगा। प्रेम-सेवक काम करने के लिये भेजे गये। बहुत से स्थानों पर अनाज के भण्डार खोल कर लोगों की सेवा की गई। महात्मा-जी स्वयं उस कठिन पहाड़ी देश मे गए और घूम-घूम कर लोगों की पीडित अवस्था को देखा। एक बार सड़क पर जाते हुए

एक बडा पत्थर लुडकता हुआ उनके घुटने पर आ लगा। चोट आई। चलना असम्भव हो गया। मास्टर गिरधारी लाल जी उनको पालकी मे डाल कर श्रीनगर मे ले आये। जिला गढ-वाल के माननीय पुरुषों ने महात्मा जी को बहुत बड़ी पार्टी दी और उन से प्रार्थना की कि गढ़वाल मे विद्या का कोई प्रचार नहीं है। जैसे महात्मा जी ने गढ़वालियों की भूख को दूर किया है, इसी तरह उन की अविद्या को भी दूर करे। महात्मा जी ने उचित उत्तर देते हुए कहा कि गढ़वाल फंड का यदि कुछ रुपया बच गया तो आप उस फंड से गढ़वालियों की अविद्या को दूर करने मे सहायता देंगे। बाद में लाहौर पहुंचते ही बहुत सी छात्र-वृत्तिया प्रारम्भ कर दी, जिस से उस प्रदेश के बहुत से योग्य विद्यार्थियों को लाभ हुआ और फिर पौडी मे दयानन्द हाई स्कूल जारी कराया।

[३५]

मलकाना शुद्धि के दिनो की बात है। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज दिल्ली मे रहते थे तथा कभी कभी आगरा आया करते थे। महात्मा जी उन के लिए बड़ा पलंग बिछवा कर उमदा बिस्तर करवाते थे। उन को पलग पर बिठा कर आप दरी पर बैठते थे। मैने एक दिन हसी मे कहा, "महात्माजी! आप कालिज पार्टी का बड़ा अपमान कर रहे है।" महात्माजी के कारण पूछने पर मैने कहा, "आपने कालिज पार्टी को बहुत नीचा दिखलाया है। आप स्वय भूमि पर बैठते है और उन्हे पलग पर बिठाते हैं।" महात्माजी ने कहा, "स्वामी जी महाराज सन्यासी है। हमारी शुद्धि सभा के प्रधान है। बाहर से आने के कारण हमारे अतिथि है। अत, हर प्रकार हमारी पूजा के पात्र हैं।" आगरा मे जब मै उनकी प्रेम भरी बात-चीत सुनता तो, हैरान होता था।

महात्माजी कहा करते कि प्रधान होने के कारण जो भी वे आज्ञा दें, मेरा कर्तव्य है कि मै उस पर पूरी तरह आचरण करू।

[३६]

यू० पी० मे गर्मी काफी होती है। महात्मा जी अनेक बार ग्रामों मे गए। वहाँ की गर्मी ने उन की आँखों पर काफी प्रभाव डाला। एक लोटा, गुड तथा जौ के सत्तू साथ लेकर चलते थे। जहाँ भूख लगती थी, मैं उन को घोल कर दे देता था। आप भी खाता था। महात्माजी का मेरे साथ हमेशा झगड़ा हुआ करता था। वे कहा करते कि 'सत्तू शीघ्र पच जाने वाले और ठडक पहुंचाने वाले होते हैं' और मैं कहता कि 'सत्तू वृद्ध पुरुषों का भोजन है। वृद्ध पुरुषों की पाचन-शक्ति कमजोर होती है। वे बोझल खाने को नहीं पचा सकते। सत्तू शीघ्र ही इस लिए पच जाते हैं, क्यों कि यह बल देने वाली वस्तु नही।'

[३७]

एक बार ग्रामीण टांगे पर चढे हुए शुद्धि के लिए हम एक ग्राम की ओर जा रहे थे। टांगा हाँकने वाला एक वृद्ध यवन था। बहुत बातें बनाने वाला। घण्टा भर उस की वाणी चलती रही। और महात्माजी उस की बाते प्रेम से सुनते रहे। सहसा बूढ़े ने महात्मा जी की ओर मुंह फेरा और बोला "बाबा जी! पञ्जाब मे अफीम का क्या भाव है?" महात्माजी हस पडे। मैने भी हंस कर कहा, "आप उत्तर क्यों नही देते?" जितनी देर हम आगरा मे रहे, जब महात्माजी अकेले होते तो, अफीम का शब्द याद दिला कर मै उन को हंसा दिया करता।

[३८]

खुशहाल चन्द जी और मैं बन्नू जाने के लिए प्रात ६ बजे

की गाडी पर लाहौर से चल पडे। गाडी ४ बजे शाम को रावलपिण्डी पहुँची। रात को हम कालाबाग गये तथा वहाँ से बन्नू पहुचे। रास्ता लम्बा था। सब थके थे। आर्य युवकों ने हमे मोटर मे बिठा कर स्टेशन से जलूस तय्यार किया। मुझे तो भूख ने पीडित कर दिया था। पर मोटर बडी धीरे धीरे चलती थी, तथा बन्नू निवासी स्थान स्थान पर पुष्प-वर्षा करते तथा महात्मा जी के जयकारे लगाते चले जाते थे। परन्तु मै खुशहाल चन्द जी को चुपके चुपके मुक्के लगाता था तथा मोटर से उतर कर भागने को कहता था ताकि किसी दुकान से दूध का चमचा प्राप्त कर सकू। परन्तु खुशहाल चन्द जी तो मेरी बात पर ध्यान ही नही देते थे। उलटा मुझे ही चुप रहने के लिए कहते थे। ८ बजे शाम को जलूस समाप्त हुआ। मैने एकान्त मे महात्माजी से निवेदन किया, "हम तो आप के साथ आना महंगा पडा।" महात्मा जी ने कहा, "क्यों ?" मैने कहा, "महाराज ! पेट मे तो चूहे दौड़ रहे है मुझे तो आध सेर दूध मिल जाता तो इस रौनक तथा जयकारों से बहुत अच्छा होता।" हस कर बोले, "बात तो आप की सत्य है, परन्तु, आर्य-भाइयों को भी नाराज़ नहीं किया जा सकता। बेचारों ने इतने प्रेम तथा श्रद्धा से जलूस का प्रबन्ध किया है। यदि आप स्टेशन पर कह देते, तो मै आप के लिए दूध का प्रबन्ध करवा देता।"

[३६]

वापसी पर जब हम रावलपिण्डी पहुंचे तो रात की दस बजे वाली गाडी पर सवार होने का निश्चय किया, परन्तु, भीड़ बहुत अधिक थी। महात्माजी भी हमारे साथ डिब्बे डिब्बे को देखते फिरते थे। एक डिब्बे मे कुछ सिक्ख भाई भी बैठे थे।

उन्हों ने कहा, "आ जाइए, सरदार जी !" महात्माजी को उन्हों ने स्थान दे दिया और हम भी कठिनता से चढ़ ही गए। दूसरे दिन लाहौर में लोयर माल की सैर करते हुए मैंने कहा, "महात्मा जी ! रात को तो आप बड़े फायदा मे रहे। यदि हम भी दाढ़ी वाले होते तो गाड़ी मे स्थान मिल जाता।" हस कर बोले, "आप को किस ने रोका है, आखिर कही तो दाढ़ी वाले भी नफे मे रहते हैं।"

[४०]

लाला शादी राम जी पासला निवासी एक ग्रामीण साहूकार थे। महात्माजी के बडे ही श्रद्धालु थे। उन का पुत्र जो नवी श्रेणी मे विद्या ग्रहण करता था, स्वर्गवास हो गया। लाला शादी राम जी की आयु लगभग ६० वर्ष की थी। सम्बन्धियों ने विवाह के लिए कहना आरम्भ किया। आप भी तय्यार हो गए। महात्मा जी तथा पं० लखपत राय जी ऐसा नहीं चाहते थे। परन्तु, लाला शादी राम जी एक नही सुनते थे। आखिर दोनों ने मिल कर एक युक्ति तय्यार की, और लाला शादी राम से पासला में एक आर्य-कन्या-पाठशाला खोलने की प्रेरणा की। लालाजी मान गए और हमने उनकी विधवा लड़की को अध्यापिका तथा लाला जी को मैनेजर बना दिया। पाठशाला के कार्य मे लालाजी ऐसे मग्न हुए कि विवाह का विचार तो एक ओर, अपने काम-काज के लिए भी समय मिलना कठिन हो गया। कन्याओं की संख्या बढ़ने लगी। स्थान-स्थान पर भ्रमण कर चन्दा मांगने लगे। वार्षिकोत्सव करने की तय्यारी होने लगी। महात्माजी के पास तिथि निश्चित करने के लिए गए। महात्मा जी पाठशाला का वृत्तान्त सुन कर अति प्रसन्न हुए और अधिक प्रसन्नता इस

लिए हुई कि लालाजी का विवाह का विचार जाता रहा।

[४१]

प्रथम योरुपीय युद्ध के शुरु मे दक्षिण भारत मे हल-चल मची। समुद्र के किनारे पर मालाबार नाम का एक जिला है। वहाँ मुसलमानों की एक कौम रहती है, जिसका नाम मोपला प्रसिद्ध है। उन की संख्या तेरह लाख के लगभग है। वे लोग विद्रोही हो गये। खुले-तौर पर उन्हों ने हिंदुओं को लूटना शुरु कर दिया। सैकड़ों हिन्दुओं को मार कर कुओं मे फैंक दिया और हजारों की सख्या मे मुसलमान बना डाले। ये समाचार जब समाचार पत्रों मे छपे, तो हिन्दुओं में बड़ी हल-चल मची, लेकिन, राष्ट्रीय समाचार पत्रों ने घटनाओं को छिपाने की चेष्टा की और कुछ हिन्दु नेताओं को भी आडे हाथों लिया। महात्मा जी ने अपने भाइयों की सहायता के लिये अपील की। लाला लाजपत राय जी के समाचार-पत्र 'वन्दे मातरम्' मे इस अपील का विरोध किया गया। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने भी महात्माजी का पत्रों मे विरोध किया। महात्माजी लोअर माल पर प्रात काल के समय सैर करने जा रहे थे। मैने उनको यह समाचार दिया कि आप की अपील के विरुद्ध 'वन्दे मातरम्' मे बहुत लिखा है। महात्माजी ने हंस कर यह उत्तर दिया, "हम ने हिन्दुओं को चेतावनी दे दी है कि आप के भाई कष्ट में हैं। अगर सारे हिन्दु ही इतने गिर चुके है कि वे अपने कष्ट के समय भी एक दूसरे की सहायता नहीं कर सकते तो मैने ठेका थोड़े ही लिया हैं।"

आप बड़े भाई साहब की कोठी पर चले गये। मै बाहर प्रतीक्षा कर रहा था। थोड़ी देर के पश्चात् वापिस आये। मार्ग

मे मुझे हस कर कहने लगे, "अपील पर बहुत रुपया सभा के पास आयेगा, क्योंकि अभी मेरी माताजी ने मुझे चालीस रुपये इस पवित्र कार्य्य के लिये दिये है।"

मुझे, खुशहाल चन्द जी और महता सावन मल्ल जी को शीघ्र मालाबार भेजा गया। पण्डित ऋषि राम जी पहले ही मद्रास से वहाॅ जा चुके थे। थोडे ही दिनों मे हजारों रुपये आर्य्य प्रादेशिक सभा को दान मे प्राप्त हुए और आर्य्य समाज को इस कार्य्य मे बड़ी भारी सफलता प्राप्त हुई।

[५२]

एक बार महात्मा जी, पण्डित लखपत राय जी और प्रिंसिपल मेहर चन्द जी नकोदर आर्य्य समाज के महोत्सव पर गए हुए थे। उन दिनों खद्दर का प्रचार बहुत था। पण्डित मेहर चन्द जी ने महात्माजी से कहा, "हमे कांग्रेस की आज्ञा का पालन करते हुए सारे स्कूलों कालिजों मे खद्दर का पहनना आवश्यक कर देना चाहिये, ताकि देश के नेता प्रसन्न हो जाएं।" महात्मा जी ने उत्तर दिया, "पण्डित जी! आपको अच्छी तरह से मालूम है कि हम स्वदेशी के कितने भक्त हैं। मुझे इस मे भी किंचित शका नहीं है कि हम खद्दर को पहने, किन्तु, इससे वे तो प्रसन्न नहीं होंगे, जिनको आप प्रसन्न करना चाहते हैं। कल को उन की ओर से यदि यह आज्ञा हुई कि स्कूल और कालिजो को बंद किया जाय तो, क्या आप उन की आज्ञा का पालन करेंगे? प्रश्न यह नहीं कि आप खद्दर पहनते है या नही। प्रश्न यह है कि आप स्वामीजी महाराज के चिह्नों पर चलते हुए आर्य्यसमाज को फैलाना चाहते है या कांग्रेस का एक भाग बनना चाहते है?" यह विचार सुन कर पण्डित जी चुप हो गये और किसी दूसरे

विषय पर बात-चीत होने लगी ।

[४३]

डाक्टर० गिरधारी लाल जी लिखते है

महात्मा जी हमेशा यह कहा करते थे कि मत किसी को कहो कि तुम समाज नहीं जाते या तुम सन्ध्या हवन नहीं करते। प्रत्येक आर्य को खुद समाज जाना चाहिए और सन्ध्या हवन करना चाहिए।

[४४]

महात्मा जी जब आर्य समाज के प्रधान थे तो हर एक सभासद् से निजि-परिचय और सपर्क पैदा किया करते और प्रत्येक दुख-सुख मे शामिल होते थे। जब कोई आर्य समाज का सदस्य बीमार होता या उस का कोई सम्बन्धी बीमार होता तो महात्मा जी स्वय खबर लेने जाते, और उन्हों ने जो सेवक मडली कायम की हुई थी, उनके सदस्यो की डयूटिए लगा दिया करते।

[४५]

१६०८ मे लाहौर मे मलेरिया और दस्तो की बीमारी बडे जोरो पर थी। महात्मा जी ने तब रोगियो के लिये औषधि तथा उपचार का प्रबध किया। स्वय रोगियो के पास जाते और उनसे हालचाल पूछते। निर्धनों के लिये उन्होंने ठहरने और खाने पीने का भी प्रबध किया।

[४६]

हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर जब मोहन आश्रम मे गये हुए थे तो महात्मा जी हर वक्त इस विचार मे रहते कि लाखों की सख्या जो साधुओं की है, यह देश और धर्म की लग्न वाले हो

जाए। इस के लिए मोहन आश्रम मे साधुओं के पढ़ने का प्रबध किया हुआ था।

[४७]

पडित शुचिव्रत जी एम० ए० लिखते हैं

महात्माजी ने २५ नवम्बर १६०५ को आर्य समाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर व्याख्यान देते हुए कहा, "यदि कोई व्यक्ति आकर मुझसे कहे कि यदि सब लोग इसाई वा मुसलमान बन जावें वा सब-के-सब नास्तिक हो जावे और वेदों को तिलाञ्जलि दे दे, तब आर्यावर्त की उन्नति हो सकती है, तो मै उस व्यक्ति के कहने पर वेदों को छोड़ने के लिये उद्यत नही। मेरा यह विश्वास है कि वेदों को न मानते हुए हम कदापि उन्नति नही कर सकते।"

[४८]

डी० ए० वी० हाई स्कूल लाहौर की दशम श्रेणी के विद्यार्थी रोशनलाल सिंह का २३ दिसम्बर १६१२ ईस्वी को प्रात काल देहान्त हो गया। उस के सम्बन्धी लाहौर मे आए हुए थे। जब महात्माजी को यह शोक-प्रद समाचार मिला तो आप तत्काल उस के सम्बन्धियों के पास आए उनको सान्त्वना दी और अन्त्येष्टि सस्कार की समाप्ति पर्यन्त उन के साथ ही रहे। अत्यन्त शीत की ओर आप ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

[४९]

महात्माजी ने इन्स्पैक्टर द्वारा स्कूल के निरीक्षण के अनन्तर २५ सितम्बर १६१३ को स्कूल के एक अध्यापक पण्डित ऋषि राम जी से कहा, "यदि इन्स्पैक्टर साहिब वृद्धावस्था के कारण आपको स्कूल से अलग करने के लिए लिखेंगे तो भी आशा है

स्कूल कमिटी आप को कुछ काल के लिए स्कूल से पृथक् न करेगी। आप निश्चिन्त रहे और कार्य करते जाएं।"

[५०]

६ अप्रैल १६२६ को दोपहर के समय महाशय राज पाल जी धर्म-वेदी पर बलिदान हुए। ७ अप्रैल प्रात ७ बजे से ११ बजे तक हिन्दु जनता न्यो हस्पताल के अन्दर और बाहर एकत्रित हुई रही, किन्तु शव कारण-विशेष से न मिला। ८ अप्रैल को महत्मा हंस राज जी, श्री पण्डित ठाकुर दत्त जी तथा अन्य दो तीन आर्य सामाजिक सज्जन एकत्रित हो कर डिप्टी कमिश्नर के पास गए और अर्थी को श्मशान भूमि मे ले जाने के मार्ग के विषय मे निश्चय कर लिया। ६ अप्रैल को श्री महाशय राज पाल जी की अर्थी साढ़े सात बजे प्रात काल हस्पताल से बाहर लाई गई। पौने बारह बजे महात्माजी ने अपने हाथों से चिता मे अग्नि लगाई। पूर्ण वैदिक रीति से अन्त्येष्टि संस्कार हुआ। १० अप्रैल बुधवार को सायकाल ८ बजे के लगभग डी० ए० वी० मिडल स्कूल के विस्तृत क्षेत्र मे महात्मा जी के सभा-पतित्व मे महाशय राजपाल जी के आत्मदान पर हिन्दुओं की एक विशाल शोक-सभा हुई। महात्माजी ने सभा के प्रारम्भ मे कहा, "मै आशा करता हूँ कि कोई भी भाषण करने वाले सज्जन किसी का दिल दुखाने वाला वचन कदापि न कहेंगे।"

किसी एक काम मे महात्माजी कितनी तत्परता से जुटते थे इसका यह एक उदाहरण है।

[५१]

महात्मा जी ने १ दिसम्बर १८८६ को वार्षिकोत्सव के अवसर पर ईश्वरोपासना और प्रार्थना की, जिस के अनन्तर

आप ने श्री मनु जी महाराज के प्रमाणों से चारों आश्रमो का व्याख्यान किया। आप ने बताया कि "इन नियमो का यथावत् पालन न करने के कारण ही हम आज इस कोटि तक पतित हो गए है। यदि सचमुच हम फिर ऋषियों का काल लौटा लाना चाहते है तो आश्रमों का सुधार करना नितान्त आवश्यक है।"

[५२]

२५ फरवरी १६२८ को पंजाब के गैर-सरकारी स्कूलों का दूसरा वार्षिकोत्सव हुआ। जनता ने श्री महात्माजी की योग्यता कार्य-कौशल तथा उन के प्रति विश्वास का परिचय देते हुए आप ही को उस महोत्सव का प्रधान निर्वाचित किया और आप ही के सभापतित्व में वह कार्य भली प्रकार निष्पन्न हुआ।

[५३]

१ जून १६२६ को डी० ए० वी० हाई स्कूल, लाहौर में स्कूल का संस्थिति-दिवस मनाया गया इस अवसर पर महात्मा जी ने भाषण दिया। प्रारम्भिक वर्षों मे एक छात्र हरनाम दास का वर्णन करते हुए आपने कहा, "यह स्कूल का एक विद्यार्थी था। नौ दिन स्कूल से अनुपस्थित रहता और दसवे दिन आ जाता, जिससे कि नाम न कट जाए। जिस समय हैड-मास्टर साहब पढ़ाते वह श्रेणी मे बैठ कर उपस्थिति लगवा लेता और अवसर पा कर फिर भाग जाता। अन्तत एक दिन पकड़ा गया। ऐसा कठोर दण्ड दिया कि याद रखेगा। तदनन्तर उस का नाम स्कूल के रजिस्टर से काट दिया गया।"

[५४]

इसी भाषण में आपने कहा, "जब नया नया डी० ए० वी० स्कूल खुला तो पहले वर्ष परिणाम अच्छा न रहा। दूसरे वर्ष साधारण तथा तीसरे और चौथे वर्ष डी० ए० वी० स्कूल का परिणाम गवर्नमेण्ट स्कूल के परिणाम से भी अच्छा रहा। गवर्नमेण्ट हाई स्कूल के हैड मास्टर उन दिनों एक अंग्रेज़ थे। वे कहा करते, बेदाढी वाला जवान किस प्रकार स्कूल चला सकता है, देख लेंगे और उन्हों ने देख लिया।"

[५५]

महात्माजी कितने संकेत-पालक तथा नियत-समयानुवर्ती थे, इस बात का व्याख्यान निम्न-वर्णित घटना भली प्रकार करती है।

एक बार महात्माजी ने नगर के मध्य भाग में होने वाली टेम्परैन्स सोसाइटी का एक अधिवेशन में सभापति का कार्य निर्वाहित करना था। कार्यारम्भ के लिए नियत किए गए समय से थोड़ा-सा काल पूर्व इतनी मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हुई कि बाज़ारों में बाढ-सी आ गई। जो कुछ थोडे से सज्जन सभा-स्थान पर पधारे हुए थे। वे इस विचार में थे कि सभा के अधिवेशन को और किसी समय के लिए स्थगित ही करना पडेगा, क्यों कि प्रधानजी इस वर्षा में न आ सकेंगे कि इतने में बिलकुल ठीक समय पर महात्माजी हाथ में छाता पकडे हुए और सिर से पाँव तक भीगे हुए आ पहुंचे।

[५६]

रङ्ग महल मिशन हाई स्कूल, जहाँ से कि महात्मा जी ने मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की थी, के हैडमास्टर स्वर्गवासी मिस्टर आर० सी० दास अपने छात्रों पर बहुत मान रखते थे

और उन कतिपय विशिष्ट छात्रों में से, उनके कथनानुसार, महात्मा जी सर्वोपरि थे। महात्मा जी को अपने हैड मास्टर के साथ कुछ विचार-भेद होने के कारण स्कूल छोड़ देने को कहा गया, किन्तु, दो तीन दिन के अनन्तर आप की योग्यता, सौजन्य तथा सद्व्यहार का आदर करते हुए आप को फिर बुला लिया गया।

इन्ही मिस्टर आर० सी० दास जी का जब १६१२ ईस्वी मे देहान्त हुआ तो इन के लिए की गई समारक सभा जिसके प्रधान स्वर्गवासी ... मुहम्मद शफी जी (जो कि श्री महात्माजी के सह-पाठी थ) थे, महात्माजी भी सम्मिलित हुए। हेडमास्टर साहिब का स्मारक स्थापित करने के लिए चन्दा एकत्रित किया गया। महात्माजी ने तत्काल अपनी जेब मे से दो रुपए निकाले और मेज पर रख दिए।

मिया मुहम्मद शफी ने वे रुपए उठाकर जनता को दिखाए और कहा, "ये दो रुपए दो लाख रुपए के समान है। क्यों कि ये एक अत्यन्त विशुद्ध तथा उत्कृष्ट हृदय वाले सज्जन ने अपने अध्यापक के प्रति अनुराग तथा आसक्ति से प्रेरित हो कर दिए है।"

[५७]

महात्माजी स्वय कभी कभी इस घटना का वर्णन किया करते थे।

उन दिनों स्कूल शहर के भीतरी भाग मे था और आप हैडमास्टर थे। एक दिन स्कूल खुलने के समय वर्षा का प्रकोप हो रहा था। यह शरद ऋतु थी और गलिएं और बाजार पिच्छल हो रहे थे। आप टांगे वा बरसाती कोट के लिए व्यय

ने कर सकते थे। आप के पास केवल एक सस्ते मेल का छाता था। दैवयोग से स्कूल में आप की पहली दो घण्टियां खाली थी। क्षण मात्र के लिए आप के हृदय मे विचार आया कि 'थोड़ा ठहर जाए और देरी हो जाने मे कोई हर्ज नही है।' किन्तु दूसरे ही क्षण मे आपके हृदय मे विचार आया कि 'यदि आज मै देरी से पहुॅचता हूॅ तो कल अध्यापक और परसों छात्र देरी से पहुंचेगे और इस प्रकार स्कूल की व्यवस्था बिगड़ जाएगी।' इसके साथ ही यह भी विचार आप के हृदय मे आया कि 'यदि मै वेतन पाता हुआ सेवक होता तो, चाहे कुछ भी हो जाता, मै स्कूल मे समय पर अवश्य पहुचता। मै वेतन नही लेता, इसी कारण मुझ मे देरी मे पहुचने के विषय मे विचार करने का साहस हुआ है। उस अवस्था मे यह इतना बुरा न होता। परन्तु, इस अवस्था में तो ऐसा करने से जनता के हृदय में छिद्रान्वेषण का भाव प्रोत्साहित होगा।' आप ने समय पर स्कूल मे पहुचना अपना कर्तव्य समझा। यह निश्चय करके आप घर से चल पडे और समय से दो मिनट पूर्व स्कूल पहुच गए।

[५८]

महात्माजी ने चन्दा एकत्रित करने का एक अच्छा ढग आविष्कृत किया था। जो विद्यार्थी बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर के कालेज छोड़ते थे, उन से आप वचन लेते थे कि वे अपनी कमाई का ६४ वां भाग (अर्थात पैसा रुपया) कालेज को देते रहेंगे। यह प्रथा आप ने १९०७ मे चलाई और कुछ देर तक सफलता पूर्वक चलती भी रही, परन्तु, ज्ञात नही कि कब और क्यों अप्रचलित हो गई।

[५९]

महात्माजी प्रति वर्ष ग्रीष्मावकाश में पर्वत-यात्रा के लिए चले जाया करते थे। आप हिमालय-पर्वत-श्रेणी में बहुत दूर दूर तक चले जाया करते थे। आप ने अपने जीवन में सहस्रों मीलों की पर्वत-यात्रा पैदल ही की है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगाजी, जमनोत्री, अमरनाथ सब स्थानों पर आप गये।

[६०]

सिक्ख गुरुओं ने जिस प्रकार पञ्च ककार का अपने सिक्खों में प्रचार किया और उन को अपने जीवन में घटाने का उपदेश किया उसी प्रकार महात्माजी पञ्च सकार का प्रचार किया करते और समस्त आर्य जनता को उन्हें अपने जीवन में घटाने का उपदेश किया करते। १९०३ में आर्य समाज के साप्ताहिक सत्सङ्गों में आप प्राय आर्यों के इस कर्तव्य का उपदेश किया करते। ये पञ्च सकार ये हैं।

१ सन्ध्या। २ समाज। ३ स्वदेश। ४ स्वाध्याय। ५ सेवा।

महात्माजी कहा करते कि "दूध और दही तो अमृत है और परमात्मा की विशिष्ट देन हैं। इन्हें ग्रहण करने के लिए कभी किसी को आपत्ति न होनी चाहिए।" वह स्वयं कभी इस विषय में अपत्ति नहीं किया करते थे। इस के अतिरिक्त खीर और भल्ले आप का रुचिकर भोजन था।

[६१]

महात्मा जी ने अपने कुछ सुयोग्य कालेज-विद्यार्थियों को प्रोत्साहन दे कर एक सभा चलवाई, जिस का नाम 'आत्मोन्नति सभा' रखा गया। मास्टर बरकत राम जी, महाशय राम सहाय

जी, भाई देश राज जी सूरी, लाला बलराज जी तथा प्रिंसिपल मेहर चन्द जी आदि इस सभा के सभासद् थे। इनका सायंकालीन-सन्ध्या में सम्मिलित होना अनिवार्य था। इस सभा का कार्यालय समाधों में था। इस सभा के कुछ सभासद् सायंकाल को आप के स्थान पर सत्यार्थप्रकाश तथा संस्कारविधि पढने को जाया करते।

[६२]

बीसवी शताब्दी के उनत्तीसवे बरस मे रावलपिण्डी मे आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि का उत्सव हो रहा था। अनेकों अन्य पंडितों और विद्वानों के अलावा पंडित विश्वबंधु आचार्य दयानंद ब्राह्म महाविद्यालय भी वहीं थे। बहस चली कि पंडित विश्वबंधु वेदों मे अनित्य इतिहास मानते है। और जब १९३१ मे महात्मा जी ने आर्य समाज के कार्य को तीव्र और विस्तृत करने के लिये पंजाब, सीमाप्रांत और सिंध के आर्यकर्त्ताओं की सभा बुलाई तो उस में भी आर्य महानुभावों ने पंडित जी के उपरोक्त विचारों की ओर महात्माजी का ध्यान आकर्षित किया। महात्माजी ने इस बात पर विद्वानों का मत लेने के लिये एक विद्वद् सभा बुलाई। यह अपने ढंग का पहला आयोजन था। सभा मे पंडित विश्वबंधु, पंडित चारुदेव, पंडित राजाराम, पंडित आर्यमुनि, पंडित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पंडित भगवद्दत्त, डाक्टर लक्ष्मण स्वरूप, लाला देवीचंद एम० ए०, स्वामी सर्वदानंद, स्वामी अच्युतानन्द, महात्मा नारायण स्वामी तथा अन्य विद्वान् सम्मिलित हुये। महात्मा हंसराज सभापति थे।

निरंतर पाँच दिन तक यह सम्मेलन होता रहा। पंडित राजाराम और पंडित चारुदेव ने तो पहले ही दिन लिखकर दे दिया

कि वे वेदों मे इतिहास नही मानते। उनके विचार में निरुक्त ऐसा मानता है। इस सम्मेलन के सबंध मे महात्माजी ने अपनी डायरी मे अगस्त १६३१ को लिखा।

"इस सम्मेलन मे पडित विश्वबधु पर यह प्रकट हो गया कि आर्य समाजी सहज से ही उनका मंतव्य स्वीकार नही कर सकते और आर्य समाजियो को अब स्पष्ट रूप से पता लग गया है कि पंडित विश्वबधु के विचार क्या है। कुदरती तौर पर इससे उनके मार्ग मे बाधा पड़ेगी।"

इस के बाद प्रश्न पैदा हुआ कि ऐसे विचारों वाला व्यक्ति ब्राह्म-महाविद्यालय का आचार्य कैसे रह सकता है? इस प्रश्न ने गंभीर रूप धार लिया। पडित विश्वबंधु के समर्थक उन्हे आचार्य रखना चाहते थे और सिद्धांत प्रेमी उन्हे अलग करना चाहते थे। दयानद कालिज कमिटी मे इस पर फूट पड़ने वाली ही थी कि महात्माजी ने सारा मामला अपने हाथ मे ले लिया। दोनो दलों ने महात्माजी को पूरे अधिकार दे दिये वह जो उचित समझे करे। महात्मा जी ने पडित विश्वबंधु जी को आचार्य पद से हटा कर दयानंद अनुसंधान विभाग मे बदल दिया और झगडा निबट गया।

[६३]

अपनी सन्तान के लिये तो महात्माजी कभी किसी के पास सिफ़ारश नहीं करते थे, परन्तु, अपने विद्यार्थियो के लिये उन्हे कितनी ही बार सर शादीलाल चीफ जज हाई कोर्ट लाहौर तथा अन्य सरकारी अफसरों के पास जाते-देखा गया। अपने विद्यार्थियों के जीवन सुखमय बनाने की उन्हें बहुत चिंता थी।

[६४]

महात्माजी का हृदय पवित्र तथा सरल था। वह यह कभी सोचते ही न थे कि उन के विद्यार्थी कभी उन को धोखा भी दे सकते हैं। कुछ विद्यार्थी इस का अनुचित लाभ उठाते। होस्टल में रहने वाले जो विद्यार्थी सन्ध्या में सम्मिलित न होते, उन को महात्माजी स्वयम् जुर्माना करते। यह जुर्माना माफ कराने का ढंग दो तीन विद्यार्थियों ने यह निकाला कि जब महात्मा जी होस्टल में आते, तो यह विद्यार्थी अपने कमरों में सन्ध्या करने बैठ जाते, द्वार का एक पट खुला रखते। महात्मा जी उन को सन्ध्या करते देख कर बड़े प्रसन्न होते। एक मास के पश्चात् वे जुर्माना माफ करने की प्रार्थना कर के कहते कि सन्ध्या हाल में वृत्ति ठीक नहीं बैठती, इस लिये अपने कमरे में सन्ध्या कर लेते हैं। इस पर जुर्माना माफ हो जाता।

[६५]

महात्माजी के सुपुत्र श्री बलराज जी जेल में थे। धर्मपत्नी का देहान्त हो चुका था। तब एक दिन महात्माजी के मकान में किसी ने चावल आटा दाल इत्यादि चोरी कर ली। चोरी का समाचार सुन कर महता अमीचन्द जी एडवोकेट उनके पास पहुँचे और कहने लगे कि चोर ने रही सही कसर निकाल दी। महात्माजी कहने लगे "चोरी किसी चोर ने नहीं की, किसी भूखे ने की है। हम उस की सहायता सीधे हाथ न कर सके। उस का पेट भूखा था। वह वही वस्तुएँ ले गया, जिन से उस का पेट भर सके।"

[६६]

लाहौर में महात्माजी की एक आँख का आॅपरेशन हुआ तो

कुछ दिनों के बाद आँख में खून उतर आया, जिससे दृष्टि जाती रही। मैं महात्मा जी के पास पहुँचा और हाल पूछा तो कहने लगे, "इस बार तो बाजी हार चुके है।" और मैंने इस पर खेद प्रकट किया तो वे बोले, "खेद काहे का। प्रभु की देन है। काफी देर तक हमें दिये रखी। अब लौटा ली तो, खेद कैसा ?"

[६७]

दूसरी आँख का ऑपरेशन कराने के लिये श्री बलराज जी महात्मा जी को वायना (जर्मनी) ले गये। काले मोतियाबिंद का इलाज करने वाले जर्मन डाक्टर वहां थे। उन्होंने बड़े परिश्रम और सहानुभूति से ऑपरेशन किया। इससे उन्हें इतनी दृष्टि प्राप्त हो गई कि अपना काम स्वयं देख भाल सके। वायना के डाक्टर का मत था कि यदि महात्मा जी कुछ वर्ष पहले आ जाते तो पूरी दृष्टि लौट सकती थी। वायना से इलाज कराने के बाद महात्मा जी इंग्लैंड पहुँचे।

योरुप के इस सारे दौरे में महात्मा जी ने अपना बन्द गले का कोट और पगड़ी नहीं छोड़ी। अपने उस देशी वेश में ही विदेशों में घूमते रहे।

[६८]

एक बार श्रीनगर (काश्मीर) आर्य समाज के उत्सव पर महात्मा हंसराजजी पधारे तो रियासत के महाराजा सर प्रताप सिंह का सन्देश पहुँचा कि 'दर्शन दीजिये, मोटर भेज रहा हूँ" महात्माजी ने कहला भेजा कि "जिस काम के लिये आया हूँ, वह कर लूं तो फिर दर्शन करने आऊँगा।"

उत्सव समाप्त हुआ तो महात्माजी को लेने के लिये महाराजा की मोटर पहुँची। जब महात्माजी महाराजा से मिले

तो महाराजा ने पूछा, "ऐसा कौन सा काम था जिस को पूर्ण किये बिना आप इधर न आ सके।" महात्माजी ने कहा, "आर्य समाज की सेवा।" महाराजा कहने लगे, "निस्सन्देह आप ने सारा जीवन इस पुण्य कार्य मे लगा दिया है, धन्य है आप।"

चित्र परिचय

चित्र-परिशिष्ट मे दिये गये चित्रों का परिचय इस प्रकार है। परिशिष्ट के पन्नों पर सख्या नहीं दी गई। नीचे दी गई सख्या आप क्रम से जान सकते है।

पहला पन्ना—महात्मा जी साधु आश्रम होशियारपुर के यज्ञ मे जा रहे है। यह चित्र १९३७ का है।

दूसरे, तीसरे, चौथे, पाचवे, छटे और सातवे पन्नो के चित्रों का परिचय चित्रों के नीचे दिया गया है।

आठवां पन्ना—[ऊपर] १९२६-२७ मे आर्य युवक समाज लाहौर के सदस्यों के साथ महात्मा जी। पहली पंक्ति मे बैठे हुये [बाई ओर से] श्री विप्रबधु, डाक्टर गवर्धनलाल दत्त, महात्मा जी, प्रोफेसर सतराम स्याल, श्री परशुराम। पीछे युवक समाज के सदस्य तथा पदाधिकारी खडे है। [**नीचे**] श्रीमती ठाकुर देवी जी स्त्री आर्य समाज की सदस्याओं के साथ। इसमे लाला लाजपत राय जी की धर्मपत्नी, श्रीमती राय बहादुर दुर्गादास, श्रीमती लाला धनीराम भल्ला, श्रीमती ईश्वरकौर, श्रीमती रत्नदेवी, श्रीमती धर्मदेवी आदि बैठी है।

नौवॉ पन्ना—[ऊपर] १९०५ मे जब दयानंद कालिज के नये भवन की नाव रियासत ईदर के हिजहाइनैस महाराजा मेजर जनरल सर प्रतापसिंह ने रखी, यह तब का चित्र है। **पहली पंक्ति**—१ लाला दौलत